हिन्दीग्रन्थरत्नाकर-सीरीजका २२ वाँ ग्रन्थ।

मेवाड़-पतन।

सुप्रसिद्ध नाटककार
स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलालरायके बंगलानाटकका
हिन्दी अनुवाद।

अनुवादक—
रामचन्द्रवर्मा,
सम्पादक नागरीप्रचारणीपत्रिका और
हिन्दीशब्दसागर।

प्रकाशक—
हिन्दीग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय, बम्बई।

माघ १९७३ वि०।

फरवरी १९१७।

मूल्य बारह आने।
राजसंस्करणका एक रुपया दो आने।

सम्पादक और प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई।

मुद्रक—
जी. एन. कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
नं० ४३४ ठाकुरद्वार, बम्बई।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर सीरीज।

हमारी सीरीजके स्थायी ग्राहकोंको प्रारम्भमें केवल आठ आना ' प्रवेश फी ' भेजना होती है। उनको सीरीजकी सब पुस्तकें पौनी कीमतमें दी जाती हैं। अब तक इस सीरीजमें निम्नलिखित ग्रन्थ निकल चुके हैं जिनकी हिंदी-संसारमें बड़ी इज्जत हुई है.—

१-२ स्वाधीनता ... ... २)
३ प्रतिभा ... ... १)
४ फूलोंका गुच्छा ... ॥-)
५ आँखकी किरकिरी ... १॥)
६ चौबेका चिट्ठा ... ॥=)
७ मितव्ययता ... ... ॥।=)
८ स्वदेश ... ... ॥=)
९ चरित्रगठन और मनोबल =)॥
१० आत्मोद्धार ... १)
११ शान्तिकुटीर ... ॥।)
१२ सफलता ... ... ॥=)
१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर ... ॥।)
१४ स्वावलम्बन... ... १।)
१५ उपवासचिकित्सा ... ॥।=)
१६ सूमके घर धूम ... =)
१७ दुर्गादास ... ... ॥।=)
१८ बंकिमनिबन्धावली ... ॥।)
१९ छत्रसाल ... ... १॥)
२० प्रायश्चित्त ... ... ।)
२१ अब्राहम लिंकन ... ॥=)

हमारी अन्यान्य पुस्तकें।

१ व्यापारशिक्षा ... ॥)
२ युवाओंको उपदेश ... ॥=)
३ शान्तिवैभव ... ।)
४ बूढ़ेका ब्याह ... ।=)
५ पिताके उपदेश ... -)॥
६ कठिनाईमें विद्याभ्यास ॥=)
७ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा =)॥
८ लन्दनके पत्र ... =)
९ ब्याहीबहू ... =)
१० विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य -)
११ कनकरेखा (गल्पगुच्छ) ॥।)
१२ सन्तानकल्पद्रुम ... ॥।)
१३ वीरोंकी कहानियाँ ... ।=)
१४ दियातले अँधेरा ... -)॥

पत्रव्यवहार करनेका पता--

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई।

भूमिका।

इस ग्रन्थके मूल लेखक स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलाल राय बंगभाषाके ख्यातनामा लेखक, कवि और नाट्यकार हो गये हैं। नाटकलेखकोंमें तो आपकी बराबरी करनेवाला इस देशमें शायद ही कोई हो। आपके नाटकोंका बंगसाहित्यको बहुत बड़ा अभिमान है। आप उन युगप्रवर्तक लेखकोंमेंसे थे, जो अपनी प्रतिभासे साहित्यकी धाराको एक नई गति प्रदान कर जाते हैं।

द्विजेन्द्रबाबू अँगरेजीके एम. ए. थे। आपका अँगरेजी भाषापर बहुत बड़ा अधिकार था। जब आप कृषिशास्त्रका अध्ययन करनेके लिए विलायत गये थे, उस समय आपने 'Lyrics of Ind' नामका अँगरेजी काव्य लिखा था, जिसे पढ़कर लोग विस्मयविमुग्ध हो गये थे। तत्कालीन अँगरेजी कवि सर एडविन आरनोल्डने उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की थी और एक विदेशी पुरुषकी अँगरेजी भाषामें इतनी अधिक क्षमता देखकर आश्चर्य प्रगट किया था। उसी समय आपके मित्रोंने आपसे अपनी इस कवित्वशक्तिको मातृभाषाकी सेवामें नियोजित करनेकी प्रेरणा की, जो आप पर काम कर गई और उसका फल यह हुआ कि आप अपने जीवनमें नाटक, गीतिनाट्य, प्रहसन, काव्य और गान आदि अनेक प्रकारके लगभग २५ ग्रन्थरत्न अपनी मातृभाषाके श्रीचरणोंमें अर्पण करके अमरता लाभ कर गये। द्विजेन्द्रबाबूका स्वर्गवास हुए कोई चार वर्ष होगये। १७ मई सन् १९१३ को आपने यह धराधाम छोड़ा था। आपकी मृत्युसे बंगसाहित्यसंसारमें अपार शोक मनाया गया था।

द्विजेन्द्रबाबूके प्राय: सबही उत्तम नाटकोंको हमने पढ़ा है। उनमें हमको एक अपूर्व ही आनन्द प्राप्त हुआ। हमने बम्बईकी प्रसिद्ध प्रसिद्ध नाटकमण्डलियोंके उर्दू, हिन्दी, गुजराती और मराठीके अनेक नाटक देखे हैं; परन्तु हमें ऐसे स्वर्गीय और पवित्र भाव, ऊँचे और मार्जित विचार, कहीं नहीं मिले। लेखनीकी हृदयको हिला देनेवाली और हृत्तन्त्रीको बजा देनेवाली ऐसी आश्चर्यजनक क्षमता हमने कहीं नहीं देखी। उच्चश्रेणीके कौटुम्बिकप्रेम,

जातीयप्रेम, और विश्वप्रेमसे आपकी रचना सराबोर है। मनुष्यस्वभावका चित्रण आपके नाटकोंमें बहुत ही अच्छा हुआ है। किसी भी पात्रको आप ले लीजिए, उसका एक निश्चित स्वभाव आदिसे अन्त तक एक खास सीमाके भीतर बहता हुआ दिखलाई देगा। अस्वाभाविकताका कहीं नाम भी नहीं। आपके आदर्श चरित्रोंकी चित्रशाला भी परम दर्शनीय है। पाषाणी (गीतिनाटय) में आदर्श ब्राह्मणचरित्र, राणा प्रतापसिंह (नाटक) में आदर्श क्षत्रियचरित्र, दुर्गादास (नाटक) में आदर्श पुरुषचरित्र और सीता (गीतिनाटय) में आदर्श स्त्रीचरित्र देखकर मन एक अपूर्व आदर्शलोकमें विचरण करने लगता है। आपके नाटकोंमें स्त्रीपात्रोंकी तो एक अपूर्व ही सृष्टि है। स्त्रीजातिकी इतनी प्रतिष्ठा, इतनी पवित्रता और इतनी महत्ता आप शायद ही किसी लेखककी रचनामें पायँगे। द्विजेन्द्रबाबूकी भारतीय स्त्रियों पर अगाध श्रद्धा थी। जिस समय आपकी पत्नीका देहान्त हुआ उस समय आपकी अवस्था केवल ३५ वर्षकी थी, पर आपने द्वितीय विवाह नहीं किया—आजन्म ब्रह्मचर्य पालन किया। यदि आपसे कोई द्वितीय विवाहका अनुरोध करता था, तो आपकी आँखोंसे आँसू निकल पड़ते थे! कहते हैं कि आपने अपनी पतिप्राणा पत्नी श्रीमती सुरबालादेवीके साहचर्यसे ही स्त्रीजातिकी उस पवित्रता और महत्ताका अनुभव किया था जो आपकी रचनामें जगह जगह प्रस्फुटित हो रही है। आपकी दृष्टिमें इस देशके पुरुषोंका चरित्र स्त्रियोंकी तुलनामें बहुत ही तुच्छ था। 'बंगनारी' नामक नाटकके एक गीतमें आपने कहा है—"हाय! इन पुरुष-पशुओंके साथ इन स्वर्गकी अप्सराओंका सम्बन्ध किसने जोड़ दिया! इन दासोंके पास ये बहुमूल्य रत्न कहाँसे आ गये! इस गन्दी कीचड़ पर यह चन्द्रमाकी चाँदनी कहाँसे आ खिली!"

आपकी रचनाकी इस अपूर्व सुन्दरतासे मुग्ध होकर और हिन्दीमें अच्छे नाटकोंका अभाव देखकर हमने आपके समस्त श्रेष्ठ नाटकोंके अनुवाद प्रकाशित करनेका संकल्प किया है। हमें आशा है कि हम अपने इस संकल्पको बहुत शीघ्र सिद्ध कर सकेंगे और थोड़े ही समयमें द्विजेन्द्र बाबूके नाटक बंगलाके समान हिन्दी साहित्यकी भी शोभा बढ़ाने लगेंगे।

आपके 'पुनर्जन्म' (सूमके घर धूम) और 'दुर्गादास' को हम पहले प्रकाशित कर चुके हैं। आज यह 'मेवाड़-पतन' प्रकाशित हो रहा है।

द्विजेन्द्र बाबू जिस समय 'दुर्गादास' को लिख रहे थे, उसी समय इस नाटकको रचनाकी भी सूत्रपात हुआ था। रूसके सुप्रसिद्ध लेखक महर्षि टाल्सटाय पर लेखककी प्रगाढ़ भक्ति थी। टाल्सटायने जिस विश्वप्रेमका प्रचार किया था, इस नाटकमें लेखकने उसी विश्वप्रेमके सिद्धान्तके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूतिका परिचय दिया है।

लेखकने मेवाड़-पतनकी भूमिकामें लिखा है—"मेरे रचे हुए अन्य नाटकोंसे इस नाटकमें एक विशेषता है। प्रकृत चरित्रको चित्रित करनेके सिवाय मेरे अन्य नाटकोंका और कोई उद्देश्य नहीं था।......परन्तु इस नाटकमें मैं एक महान् सिद्धान्तके–विश्वप्रेमके उद्देश्यको लेकर उपस्थित हुआ हूँ। इसमें कल्याणी, सत्यवती और मानसी इन तीन पात्रोंके चरित्र क्रमसे दाम्पत्यप्रेम, जातीयप्रेम और विश्वप्रेमकी मूर्तियोंके रूपमें कल्पित किये गये हैं। इस नाटकका मुख्य उद्देश्य विश्वप्रेमकी गरिमा और महत्ता प्रकट करना है।......"

कविका आशय यह है कि जातिको उन्नत करनेके लिए मनकी संकीर्णताको मिटाना होगा–देशप्रेमके नामसे मनको संकुचित या मलीन करनेसे काम न चलेगा–हृदयको उदार बनाना होगा और मनुष्यता प्राप्त करनी होगी। कविने अपनी सारी मानसिक शक्तिको और सारे हृदयके आवेगको लगाकर अपने देशभाइयोंको नाटकान्तके एक गीतमें समझाया है कि तुम्हारी मनुष्यता खो गई है। इस लिए अब तुम फिरसे मनुष्य बनो और उस मनुष्यताको प्राप्त करनेके लिए विश्वप्रेमी बनो। जब मनुष्य बन लोगे, तब ही तुम देशकी दीनता और दुःखको दूर करनेके अधिकारी बन सकोगे। इस विषयमें मानसी और सत्यवतीका संवाद उल्लेखयोग्य समझकर उद्धृत कर दिया जाता है:—

"**मानसी**—जिस प्रकार स्वार्थकी अपेक्षा जातीयत्व बड़ा है उसी प्रकार जातीयत्वकी अपेक्षा मनुष्यत्व बड़ा है। यदि जातीयत्व मनुष्यत्वका विरोधी हो, तो मनुष्यत्वके महासमुद्रमें उस जातीयत्वका विलीन हो जाना अच्छा है। अच्छा हो यदि ऐसे मनुष्यत्वविहीन देशकी स्वाधीनता डूब जाय और वह जाति फिर मनुष्य बन जाय–गये हुए मनुष्यत्वको फिर प्राप्त करे।

सत्यवती—बहिन, क्या कभी ऐसा होगा?

मानसी—क्यों न होगा! हम सबको चाहिए कि उसीकी साधना करें। उच्च साधना कभी निष्फल नहीं होती। इस जातिके लोग फिर मनुष्य बनेंगे।

सत्यवती—कब ?

मानसी—जिस दिन लोग सीमासे बाहर पहुँचे हुए आचारोंके और क्रिया-काण्डोंके क्रीत दास न रहकर स्वयं सोचना विचारना सीखेंगे, जिस दिन उनके भीतर भावोंके स्रोत फिरसे बहेंगे, जिस दिन ये लोग जिसे उचित और करने योग्य (कर्तव्य) समझेंगे, उसे निर्भय होकर किये जायँगे, किसीकी प्रशंसाकी अपेक्षा न रक्खेंगे—किसीकी टेढ़ी की हुई भौंहोंकी जरा भी परवा न करेंगे और जिस दिन ये युगोंकी पुरानी पोथियोंको फेंक कर नया धर्म ग्रहण करेंगे।

सत्यवती—मानसी, वह नया धर्म कौनसा ?

मानसी—उस धर्मका नाम है प्रेम। जो कोई इस धर्मका उपासक बनता है उसे अपने आपको छोड़कर क्रमशः भाईके साथ, जातिके साथ मनुष्यके साथ और उसके बाद मनुष्यत्वके साथ प्रेम करना सीखना पड़ता है। इसके बाद उसे स्वयं और कुछ नहीं करना पड़ता; ईश्वरका कोई अज्ञेय नियम उसके भविष्यतको स्वयं ही सुधार देता है। बहिन, जातीय उन्नतिका मार्ग लहूकी नदियोंके बीचमेंसे होकर नहीं, किन्तु आलिंगनके मध्यमेंसे होकर है......।

राणा—मानसी, मनुष्य किस प्रकार बना जाता है ?

मानसी—शत्रु-मित्रका ज्ञान भूलकर, विद्वेष त्याग कर, अपनी कालिमा और देशकी कालिमाको विश्वप्रेमके जलसे धोकर !—गाओ चारणियो—

किसेर शोक करिस भाई !—आवार तोरा मानुष ह'।
गियेछे देश दुःख नाई,—आवार तोरा मानुष ह'।
परेर ' परे केन ए रोष, निजेरई यदि शत्रु हो' स ?
तोदेर ए जे निजेरई दोष, आवार तोरा मानुष ह '।
भूलिये जारे आत्मपर, परके निये आपन कर,
विश्व तोर निजेर घर,—आवार तोरा मानुष ह '।
शत्रु हय होक ना, यदि सेथाय पास् महत्प्राण,
ताहारे भालवासिते शेख्, ताहारे कर् हृदय दान।
मित्र होक,–भण्ड जे—ताहारे दूर करिया दे;
सबार बाड़ा शत्रु से; आवार तारा मानुष ह '।
जगत् जूड़े दुइटि सेना, परस्पर राँगाय चोक्,
पुण्य सेना निजेर कर, पापेर सेना शत्रु होक्।

धर्म जथा सेथाय थाक; ईश्वरेर माथाय राख्,
स्वजन देश डुबिया जाक्,—आवार तोरा मानुष ह' * । "

इस नाटकमें ऐसी और भी अनेक बातें हैं जिनसे बहुत कुछ सोचा समझा और सीखा जा सकता है । जैसे-"यदि मुसलमानोंकी संख्या कम हो जायगी तो वे हिन्दुओंको मुसलमान बनाकर उसकी पूर्ति कर लेंगे और फिर लड़ेंगे। पर हिन्दू मुसलमानोंको हिन्दू नहीं बना सकते; बल्कि जो किसी कारण मुसलमान बन गये हैं, उन्हें भी वापस नहीं लेते । "

"जिनके रक्तमें मृत्युका बीज मिला हुआ है, क्या वे भी एक दूसरे पर प्यार न करके घृणा कर सकते हैं ?"

"पृथिवीमें दो राज्य हैं-एक स्वार्थका और, दूसरा त्यागका । एकका जन्मस्थान है नरक और दूसरेका स्वर्ग । एकका देव है शैतान और दूसरेका ईश्वर । मैं अभी तक स्वार्थके राज्यमें रहता था; पर उस दिन मैंने त्यागका राज्य देखा । उस राज्यके राजा हैं बुद्ध, ईसा और गौराङ्ग; उस राजाकी राजनीति है स्नेह, दया और भक्ति । उस राज्यका शासन है सेवा, दण्ड है अनुकम्पा और आत्मोत्सर्ग या बलिदान है पुरस्कार । मैं उस दिनसे उस राज्यकी प्रजा बन गया-जिस हाथसे कभी तलवार नहीं पकड़ी थी, उस हाथमें दुखियोंकी रक्षाके लिए तलवार पकड़ ली। उस समय मेरे कन्धोंपर डाकुओंने जो तलवारोंके आघात किये वे फूलों जैसे कोमल मालूम हुए ।...... पहले मैं मरनेसे बहुत डरता था; परन्तु अब मुझे जरा भी डर नहीं है ।" +

यह नाटक कलकत्तेके मिनर्वा थियेटरमें अभिनीत हो चुका है । इसे जिस प्रकार दर्शकोंने पसन्द किया है उसी प्रकार साहित्यसेवकोंने भी इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है । एक प्रवीण समालोचकने तो इसे 'इस युगका सर्वगुणसम्पन्न श्रेष्ठ प्रकाश' कह डाला है । हमको आशा है कि हमारे गुणग्राही

---

* इस गीतका हिन्दी अनुवाद ग्रन्थके अन्तिम दृश्यमें दिया है बंगला जाननेवाले पाठकोंको मूलके भावका आस्वादन करानेके लिए यहाँ बँगलागीत ज्योंका त्यों उद्धृत कर दिया गया है ।

+ ग्रन्थमें यह अँश उर्दू-प्रचुर भाषामें दिया है । यहाँ शुद्ध हिन्दीमें दिया जाता है ।

हिन्दी–संसारमें भी इसका यथेष्ट आदर होगा और इसके अभिनयसे जो विश्व-प्रेमकी मन्दाकिनी बहेगी उसमें हमारे देशका चिरसञ्चित धार्मिकद्वेष धीरे धीरे अवश्य बह जायगा।

अन्तमें हम स्वर्गीय द्विजेन्द्र बाबूके सुयोग्य पुत्र श्रीमान् दिलीपकुमार राय महाशयके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके इस वक्तव्यको समाप्त करेंगे जिनकी कृपासे हम इस नाटकको प्रकाशित कर सके और जिन्होंने अपनी प्रशंसनीय उदारतासे हमें अपने पिताके समस्त ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करनेकी अनुमति दे दी है।

निवेदक—

माघशुक्ला १०
सं० १९७३ वि०

नाथूराम प्रेमी।

कृतज्ञता-प्रकाश।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक और सुकवि कलकत्ता-निवासी श्रीयुक्त प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने कृपाकर इस नाटकके लिए इतने सुन्दर और मनोहर गीत बना दिये हैं। कालिका स्टार्सके अध्यक्ष श्रीयुक्त बा० मदनलाल गाड़ोदिया और भारतमित्रके संयुक्त सम्पादक अपने परमप्रिय मित्र श्रीयुक्त पं० वासुदेवमिश्रका भी मैं अत्यंत अनुगृहीत हूँ जिन्होंने उन गीतोंकी लय आदि ठीक करके उन्हें गानेके लिए बहुत ही उपयुक्त बना दिया है।

—रामचन्द्र वर्म्मा।

मेवाड़-पतन ।

नाटकके प्रधान पात्र।

नट।

राणा अमरसिंह	मेवाड़के राणा।
सगरसिंह	अमरसिंहके बड़े भाई।
महाबतखाँ (मुगल-सेनापति)	सगरसिंहके पुत्र।
अरुणसिंह (सत्यवतीका पुत्र)	महाबतखाँका भानजा।
गोविन्दसिंह	राणा अमरसिंहके सेनापति।
अजयसिंह	गोविन्दसिंहके पुत्र।
गजसिंह	जोधपुरके राजा।
हिदायतअली, अब्दुल्ला	मुगल-सेनापति।
हुसैन	हिदायतअलीका अधीनस्थ कर्मचारी।

नटी।

राणी रुक्मिणी	राणा अमरसिंहकी स्त्री।
मानसी	राणा अमरसिंहकी कन्या।
सत्यवती	सगरसिंहकी कन्या।
कल्याणी	महाबतखाँकी स्त्री।

मेवाड़-पतन ।

पहला अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान—सलुम्बर-नरेश गोविन्दसिंहका घर ।

समय—दोपहर ।

[गोविन्दसिंह और उनके पुत्र अजयसिंह खडे हुए बातें कर रहे हैं ।]

गोविंद०—अजय, राणाजीने यह बात किससे सुनी कि मुगल-सेना मेवाड पर आक्रमण करनेके लिए आ रही है ?

अजय०—जी, यह तो मुझे नहीं मालूम ।

गोविंद०—राणाजीने तुमसे क्या कहा था ?

अजय०—उन्होने यही कहा था कि हम सन्धि करना चाहते हैं। इसीलिए उन्होने कल सबेरे दरबारमे सब सामन्तोंको बुलवाया है; साथ ही आप भी बुलाये गये है ।

गोविंद०—मुझे उन्होंने किस लिए बुलाया है ?

अजय०—सलाह करनेके लिए ।

गोविंद०—सन्धिके सम्बन्धमें सलाह करनेके लिए ?

अजय०—जी हाँ !

गोविंद०—लेकिन अजय, आज तक तो मैंने कभी सन्धिके सम्बन्धमें कोई बातचीत की ही नहीं। लगातार पचीस वर्षोंसे मै तो केवल युद्ध ही करता आया हूँ । मैं तो केवल तलवारोकी झनकार, भेरियोका भैरव-निनाद, घोड़ोंका हींसना, घायलोंका चिल्लाना और छटपटाना जानता हूँ। इतने दिनोसे मै तो केवल ये ही सब बातें देखता आया हूँ। शत्रुके साथ सन्धि तो मैंने आज तक देखी ही नहीं। मैं तो यह भी नही जानता कि सन्धि कैसे की जाती है। (अजयसिंह चुपचाप खड़े रहते है; कोई उत्तर नही देते। गोविन्दसिंह सिर नीचा करके कुछ सोचते है; और तब फिर पूछते है)—राणाजीने तुमसे यह भी कहा है कि वे क्यों सन्धि करना चाहते है ?

अजय०—उन्होने कहा था कि इधर कई वर्षोंसे मेवाड़की दशा बहुत कुछ सुधर गई है; अब इस धनधान्यपूर्ण और सुन्दर देशमे व्यर्थ रक्तपात करना ठीक नहीं ।

गोविंद०—इसीलिए मुगलोकी जूतियाँ सिर पर रखनी चाहिए ? जिस दिन विलासने आकर स्वर्गीय महाराणा प्रतापसिहकी स्वेच्छा-वृत दरिद्रताके स्थान पर बलपूर्वक अधिकार किया था, उसी दिन मैने समझ लिया था कि मेवाड़का पतन अब बहुत दूर नहीं है । उस महापुरुषने मरनेके समय कहा था कि हमारे पुत्र अमरसिंहके राजत्व-कालमें मेवाड़ देश मुगलोंके हाथ बिक जायगा । मुगल भी शक्ति-

मदसे पागल और अन्धे हो रहे हैं। चलो, इस बार सर्वस्व नष्ट हो जायगा।

अजय०—राणाजीने भी तो यही कहा था कि अब मुगलोंका मुकाबला करना मेवाडके लिए असम्भव है, इसलिए व्यर्थ रक्तपात क्यों किया जाय?

गोविंद०—अजय! क्या तुम भी उन्हींकी तरह हो गये? क्या तुम चाहते हो कि हम लोग दास होकर जुँएँमे गला फँसा दें? मैं जानता हूँ कि मुगल दिल्लीके बादशाह है, और बादशाहके विरुद्ध विद्रोह करना पाप है। लेकिन मेवाड राज्य भी तो अभी तक स्वाधीन ही है। जब तक गोविन्दसिंहके शरीरमें प्राण हैं तब तक उसकी स्वाधीनता नष्ट न होने पायगी। लगातार सात सौ वर्षोंसे मेवाडकी जो रक्त ध्वजा हजारो आँधियो और बिजलियोकी परवा न करके अभिमानपूर्वक उड रही है, वह क्या केवल मुगलोकी लाल लाल आँखें देखकर गिर जायगी? कभी नहीं। तुम जाओ और राणाजीसे कह दो कि मै आता हूँ।

[अजयसिंह जाते हैं।]

(अजयसिंहके चले जानेपर गोविन्दसिंह दीवारपरसे टॅगी हुई तलवार उतारते है उसे धीरेधीरे म्यानसे बाहर निकालते हैं और तब उसे सम्बोधन करके कहते है)—“ मेरी प्यारी साथ देनेवाली! देखो, जबतक तुम मेरे हाथमें रहो तब तक महाराणा प्रतापसिंहका अपमान न होने पावे। प्यारी! इतने दिनो तक मैं तुम्हे भूल गया था, शायद इसीलिए तुम इतनी मलीन हो रही हो! लेकिन तुम व्याकुल मत होओ। इस बार मैं तुम्हें अपने साथ मेवाडके युद्धमें ले चलूँगा। तुम्हें मुगलोंका गरमागरम लहू पिलाऊँगा। तुम मुझे क्षमा करो और मुझसे गले मिलो।”

(तलवारको कलेजेसे लगाते हैं और तब उसे धीरे धीरे घुमानेकी चेष्टा करते हैं। फिर कहते हैं)—" नहीं हाथ काँपता है; जान पड़ता है कि अब मुझसे तुम्हारी मर्य्यादाकी रक्षा न हो सकेगी। अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ।" (तलवार रखकर और दोनों हाथोंसे सिर पकड़ कर बैठ जाते हैं। आँखोंमेंसे आँसू निकल पड़ते है। तब कहते हैं,)—" हे ईश्वर ! यह तुमने क्या किया ?" (खडे होकर फिर तलवार उठाते हैं। इतनेमें उनकी कन्या कल्याणी आ जाती है।)

कल्याणी—पिताजी ! यह क्या है ?

गोविंद०—यह तलवार है बेटी, देखो।

कल्याणी—नहीं पिताजी, आप उसे रख दीजिए। आज आपने अचानक हाथमें तलवार क्यों ले ली ? आप उसे रख दीजिए। आपको हाथमें तलवार लिये देखकर मुझे डर लगता है।

(गोविन्दसिंह तलवारकी नोक जमीनपर टेक देते है और प्रेम भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कल्याणीसे कहते हैं,)—"देखो कल्याणी ! यह तलवार कैसी भयंकर और कैसी सुन्दर है ! जानती हो, यह क्या माँगती है ?"

कल्याणी—नहीं, क्या माँगती है ?

गोविंद०—लहू।

कल्याणी—किसका ?

गोविंद०—मुसलमानोंका।

कल्याणी—लेकिन पिताजी, मुसलमानोंपर आपका इतना क्रोध क्यों है ?

गोविन्द०—इसका कारण तुम अपनी जन्मभूमि मेवाड़से पूछो। सात सौ वर्षोंसे मुसलमान बार बार इस स्वाधीन राज्यको अपने

अधीन करनेके लिए राक्षसोंकी तरह उसपर टूटते हैं, लेकिन जिस तरह पहाड़से टकरा कर समुद्रकी लहरें लौट जाती है उसी तरह वे भी हरबार लौट जाते है । कोई पूछे, इस बेचारे मेवाड़ने उनका क्या अपराध किया है ? लेकिन जब मनुष्य शक्तिमदसे अन्धा हो जाता है तब उसे न्याय और अन्याय कुछ नही सूझता, उस समय यह तलवार ही उसे अन्याय करनेसे रोक सकती है । लेकिन हाय ! कल्याणी, क्या कहूँ, अब मै बहुत बूढ़ा हो गया हूँ ।

[कल्याणी रोती है ।]

गोविन्द०—क्यो कल्याणी, तुम रोती क्यो हो ? क्या तुम्हें डर लगता है ? डरो मत । मै इसे म्यानमे रख देता हूँ । (तलवारको म्यानमे रखकर) जाओ, तुम अन्दर जाओ । मै भी जाता हूँ ।

[गोविन्दसिंह चले जाते हैं ।]

कल्याणी—पिताजी ! यदि आप कुछ सोचते, कुछ समझते—

दूसरा दृश्य ।

स्थान–उदयपुरकी एक सडक । **समय**–तीसरा पहर ।

[कई चारणोंके साथ सत्यवती गाती है ।]

भैरवी ।

है मेवाड़ पहाड़ य जूझा जहाँ सिंह परताप ।
अटल रहा पर्वतसा यद्यपि सहे घोर सन्ताप ॥
धधकी रूपागिन पदमिनकी जहाँ प्रबल चहुँओर ।
कूद पड़ी थी जिसमें सेना यवनोंकी घनघोर ॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है ।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है ॥

है मेवाड़ पहा' यही जहँ लाल हुआ है नीर।
रक्त बहा मर मिटे जहाँ हैं लाखों छत्री बीर॥
म्लेच्छ राजको गढ़ चितौरसे मार भगाया दूर।
हर लाया उसकी कन्याको बाप्पा रावल सूर॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥
है मेवाड़ पहाड़ यह गलता बन करके नित छीर।
मधुर सुखद हैं सबसे जिसके अन्न फूल फल नीर॥
कुंजोंमें करते हैं कलरव जहाँ सारिका कीर।
काननमें जहँ बहै सुगन्धित शीतल मन्द समीर॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥
नभको इस मेवाड़ शलका शिखर रहा है चूम।
भरी हुई है स्वर्गज्योतिसे यह सारी वनभूम॥
वनफूलोंसे ललनायें सब करती हैं शृङ्गार।
दयावती पतिव्रता साहसिन नहिं ऐसी संसार॥
है मेवाड़ पहाड़ यह जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥

[इतनेमें अजयसिंह वहीं आ पहुँचते है ।]

सत्यवती—क्या आप सैनिक हैं ?

अजय—हाँ, मैं मेवाड़का एक सेनापति हूँ ।

सत्यवती—मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ । मैंने जो कुछ सुना है क्या वह सत्य है ?

अजय—तुमने क्या सुना है ?

सत्यवती—यही कि मुगल-सेना फिर मेवाड़ पर आक्रमण करनेके लिए आरही है ।

अजय—अभी आ तो नहीं रही है; पर हाँ, यदि राणाजी सन्धि न करेंगे तो वह अवश्य आकर आक्रमण करेगी। मुगल-सेनापतिने यही जाननेके लिए अपना एक दूत भेजा है कि राणाजी लड़ेंगे या सन्धि करेंगे।

सत्यवती—क्या आप लोग युद्धके लिए तैयार हैं?

अजय—राणाजी जैसी आज्ञा देंगे हम लोग वैसा ही करेंगे। युद्ध या सन्धि राणाजीकी इच्छा पर निर्भर है।

सत्यवती—क्या आपको कुछ मालूम है कि राणाजी युद्ध करेंगे या सन्धि?

अजय—नहीं। पर तो भी जहाँतक मैं समझता हूँ, राणाजी सन्धि करना चाहते हैं। इसी सम्बन्धमें परामर्श करनेके लिए उन्होंने मुझे पिताजीको बुलाने भेजा था।

सत्यवती—आपके पिता कौन हैं?

अजय—मेवाड़के प्रधान सेनापति गोविंदसिंह।

सत्यवती—आप सेनापति गोविंदसिंहके पुत्र हैं? भला बतलाइए तो सही, उनकी क्या इच्छा है?

अजय—वे तो युद्ध ही करना चाहते हैं।

सत्यवती—बहुत ठीक। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। अब आप जा सकते है।

[अजयसिंह वहाँसे चले जाते हैं।]

सत्यवती—सन्धि! क्या राणा प्रतापसिंहके पुत्र मुगलोंके साथ सन्धि करनेका विचार करते हैं! नहीं, यह कभी नहीं हो सकता, अवश्य ही इसमें कुछ भ्रम हुआ है। (चारणोंसे) तुम लोग इसी पेड़के नीचे मेरी राह देखना। मैं अभी आती हूँ।

[सब चारण एक ओर जाते हैं और सत्यवती दूसरी ओर जाती है।]

तीसरा दृश्य ।

स्थान—उदयपुरमें मेवाड़की राजसभा । **समय**—प्रभात ।

[सिंहासनपर राणा अमरसिंह बैठे है। उसके दोनों ओर और सामने सामन्त लोग हैं। गोविन्दसिंह एक तरफ खड़े है।]

जयसिंह—महाराज ! इस विषयमें राजपूतोंमें कोई मतभेद नहीं है कि जब मुगल-सेना मेवाड़ तक पहुँच गई है, तब हम लोगोंको क्या करना चाहिए। हम लोग लड़ेंगे।

राणा—जयसिंह ! यह छोटासा राज्य किसके बल पर इतने बड़े बादशाह शाहंशाह जहाँगीरकी विराट् मुगल-सेनाका सामना करेगा ?

जयसिंह—महाराज ! क्षत्रियोंकी शूरताक बल पर ।

कृष्णदास—महाराजके स्वर्गीय पिता महाराणा प्रतापसिंहजीने किसके बल पर मुगलोंका सामना किया था ?

राणा—उनकी बात छोड़ दो। वे मनुष्य नहीं थे ।

शंकर—वे भी तो राजपूत ही थे।

राणा—नहीं शंकर, वे मनुष्य नहीं थे। वे केवल एक दैवी शक्तिकी तरह, आकाशके वज्रपातकी तरह, पृथ्वीके भूकम्पकी तरह, समुद्रकी लहरकी तरह हम लोगोंमें अचानक आगये थे। कोई नहीं कह सकता कि वे कहाँसे आये थे और कहाँ चले गये। सब लोग उनकी बराबरी नहीं कर सकते ।

कृष्णदास—यह बात ठीक है कि सब लोग उनकी बराबरी नहीं कर सकते, पर तो भी सब लोग यह आशा अवश्य रखते हैं कि उनके पुत्र उन्हींका अनुकरण करेंगे। स्वर्गीय महाराणाजीने मेवाड़की स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपने प्राण दिये; और उनके पुत्र बगैर लड़ेभिड़े ही मुगलोंकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे ?

राणा—कृष्णदास! यह एक सुन्दर अनुभूति मात्र है। इधर कई वर्षोंसे मेवाड़की प्रजा धनी, सुखी और सम्पन्न होगई है। राज्यमें बहुत शान्ति विराज रही है। क्या केवल उसी अनुभूतिके लिए इतने सुख, इतनी स्वच्छन्दताका नाश कर दिया जाय? जब कि केवल नाम मात्रका कर दे देनेसे ही इतने रक्तपातसे रक्षा हो सकती है, तो व्यर्थ इतनी हत्यायें क्यों हों?

शंकर—महाराज! हम लोग कर देंगे? किसे? मुगलोंको? वे कर लेनेवाले होते कौन हैं? वे किस अधिकारसे भगवान् रामचन्द्रके वंशधरोंसे कर चाहते हैं?

राणा—थोड़ासा कर देकर इस सुख, शान्ति और स्वच्छन्दताकी रक्षा करना अच्छा है, या कर न देकर इन सबको खो बैठना? क्यों गोविन्दसिंहजी! आपकी क्या सम्मति है?

गोविन्द०—(चौंक कर) भला मैं इस विषयमें क्या सम्मति दूँगा? मैं कुछ नहीं कह सकता और न मैं इन सब बातोंको समझता ही हूँ। मैं तो जानता ही नहीं कि सुख, शान्ति और स्वच्छन्दता किसे कहते हैं। मैं केवल दुःख जानता हूँ। बाल्यावस्थासे ही मेरा दुःखका साथ रहा है, विपत्तिकी गोदमें ही मैं पला हूँ। महाराज मैं बराबर पचीस वर्ष तक स्वर्गीय महाराणाजीके साथ जंगलों पहाड़ोंमें भूखा प्यासा घूमता रहा हूँ। उस महात्माकी सेवामें रहकर पच्चीस वर्ष तक मैंने दरिद्रताके व्रतका ही अभ्यास किया है। उन पच्चीस वर्षोंमें मैंने दुःखका ही परम सुख भोगा है। उस सुखका क्या पूछना है! दूसरोंके लिए दुःख भोगनेमें कैसा सुख मिलता है! कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए दरिद्रता भोगना कैसी अच्छी बात है! प्रातःकाल सूर्य्यकी सोनहरी किरणें जिस स्नेहके साथ उस दरिद्र-

ताकी कुटीपर पड़ती हैं, उस स्नेहके साथ शायद और कहीं भी न पड़ती होंगी। महाराज ! मेरे कैसे अच्छे दिन निकल गये ! (बोलते बोलते रुक जाते है।)

जयसिंह—गोविन्दसिंहजी ! बीचहीमें चुप क्यों हो रहे ? कहिए, आगे कहिए।

गोविन्द०—क्या कहूँ ? कुछ कहा नहीं जाता। मैंने उसी मेवाड़में उस देवताकी कुटियाको टूटते हुए और उसके स्थान पर भोग-विलासके लिए नाट्य-भवन बनते हुए देखे हैं। उसी महात्माके पवित्र मन्दिरको तोड़कर उसीके पत्थरोंसे ऐश्वर्य्यके प्रासाद बनते हुए देखे हैं। जो पहाड़ किसी दिन जय-ध्वनिसे गूँजा करता था, जो पहाड़ कीर्तिके कारण ही महत् और पवित्र हुआ था, उसकी छायामें अब विलासके निकुंजवन बनते देखे हैं। मैने अपनी इस क्षीण दृष्टिसे उस महत्त्वको धूआँ बन कर आकाशमें मिलते हुए देखा है। जयसिंहजी ! सब कुछ गया और बचा ही क्या है ? अब तो उस महिमाकी बची खुची किरणें ही हैं। अब तो वह महत्त्व अधमरा और मृत्यु-शय्यापर पड़ा पड़ा करुणाभरी दृष्टिसे हम लोगोंकी ओर टक लगाये, मृत्युकी प्रतीक्षा करता हुआ, दिखाई पड़ता है।

केशव०—गोविंदसिंहजी ! जबतक आप जीते हैं, वह गौरव नष्ट नहीं हो सकता।

गोविन्द०—मैं ! केशवसिंहजी, अब भला मैं क्या करूँगा ? अब मेरे वे दिन नहीं रहे। अब मैं बहुत ही बूढ़ा होगया हूँ। बुढ़ापेके कारण अब मेरे हाथ काँपने लगे हैं। इन हाथोंसे तो अब मैं अच्छी तरह तलवार भी नहीं पकड़ सकता। इस पंजरकी क्षीण हड्डियाँ मेरे

शरीरको खड़ा भी नहीं रख सकतीं। लेकिन महाराज! अब भी यही इच्छा होती है कि फिर उन्हीं जंगलों और पर्वतोंमें चला जाऊँ, मातृ-भूमिके लिए फिर वही मधुर दुःख भोगूँ, देशभाइयोंके लिए फिर पहले-की तरह जंगलोंमें मारा मारा फिरूँ। हाय ईश्वर! पर तुमने तो दुःख सहनेकी शक्ति भी छीन ली! (गोविन्दसिंह चुप हो जाते हैं। उन्हें चुप देखकर और कोई नहीं बोलता।)

राणा—लेकिन गोविन्दसिंहजी! आप देखते हैं, सारे भारत-वर्षने मुगल-सम्राट्के आगे सर झुकाया है। तब, राजपूतानेका यह छोटासा राज्य मेवाड़, उसकी विशाल और विश्वविजयिनी सेनाके सामने क्या कर सकेगा? कहिए, क्या कहते हैं?

गोविन्द०—महाराज! मुझे जो कुछ निवेदन करना था, वह मैं पहले ही कर चुका हूँ। अब मुझे और कुछ नहीं कहना।

राणा—सामन्तगण! हमारी समझमें तो युद्ध व्यर्थ है। हम मुगल-सेनापतिके साथ सन्धि करेंगे। चोबदार! मुगल-दूतको बुलाओ।

[चोबदार जाता है।]

गोविन्द०—महाराणा प्रताप! महाराणा प्रताप! अच्छा हो यदि तुम स्वर्गमें बैठे हुए यहाँकी ये बातें न सुन सको! वज्र! तुम अपने भैरव स्वरसे इस हीन उच्चारणको दबा दो। और मेवाड़! मुगलोंकी प्रभुता स्वीकार करनेसे पहले ही तुम किसी भारी भूकम्पसे ध्वंस हो जाओ।

[चोबदारके साथ मुगल-दूत आता है।]

राणा—तुम अपने सेनापतिसे जाकर कहो कि हम सन्धि कर-नेके लिए तैयार हैं।

[तेजीके साथ झपटती हुई सत्यवती आती है ।]

सत्यवती—कभी नहीं। कभी नही। सामन्तगण! आप लोग युद्धके लिए तैयार हो जायें। राणाजी यदि आप लोगोको रण-क्षेत्रमें न ले जायँ तो आप लोगोंकी सेनाका सचालन मै करूँगी।

गोविन्द—देवी, तुम कौन हो ? इस घोर अन्धकारमे बिजलीकी तरह आ खडी होनेवाली तुम कौन हो ? यह कोमल और गम्भीर वज्र-ध्वनि किसकी सुनाई पडती है ?

राणा—सच बतलाओ, तुम कौन हो ?

सत्यवती—महाराज! मै एक चारणी हूँ। मै मेवाडके गाँवों और तराइयोमे उसकी महिमा गाती फिरती हूँ। इससे अधिक मेरे किसी और परिचयकी आवश्यकता नही।

सामन्तगण—आश्चर्य्य!

सत्यवती—सामन्तगण! राणाजी उदयसागरके प्रासादकुजमे पडे पडे विलासके स्वप्न देखा करे। मै आप लोगोको युद्धक्षेत्रमें ले चलूँगी।

गोविन्द—यह क्या ? मेरे शरीरमे यह यौवनका तेज कहाँसे आ गया! मुझमे यह आनन्द, यह उत्साह कहाँसे आकर भर गया! सामन्तगण, आप लोग महाराणा प्रतापके पुत्रकी इस अपयशसे रक्षा कीजिए। इस विलासको लात मारिए, इन सब खिलौनोको नष्ट कर दीजिए।

(पीतलका एक मीर-फर्श उठाकर गोविन्दसिंह पास ही लगे हुए एक बडे शीशेपर फैंककर मारते है। शीशा चूरचूर हो जाता है।)

गोविन्दसिह—सामन्तगण! आप लोग अस्त्र उठाइए। (राणाका हाथ पकडकर) आइए महाराज!

राणा—गोविन्दसिंहजी! चलिए हम युद्ध करेंगे। मुगलदूत! जाओ अपने मालिकसे जाकर कह दो कि हम लोग युद्ध करेंगे। चोबदार! हमारा घोड़ा तैयार कराओ।

सत्यवती—जय! मेवाड़के राणाकी जय!

सामन्तगण—जय! मेवाड़के राणाकी जय!

चौथा दृश्य।

स्थान—आगरेमें महाबतखाँका मकान। **समय**—प्रभात।

[सेनापति महाबत खाँ और मुगल-सरदार अब्दुल्ला खड़े हुए बातें कर रहे हैं।]

महाबत—क्या हिदायतखाँ सिपहसालार हो गये?

अब्दुल्ला—जी हाँ, जनाब!

महाबत—क्या इस बातको आप अच्छी तरह जानते हैं कि हिदायत खाँ सिपहसालार हो गये?

अब्दुल्ला—जी हाँ जनाब, मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि बादशाह सलामतने उनके साथ पचास हजार फौज भेजी है।

महाबत—कहाँ हिदायतखाँ और कहाँ सिपहसालारी! आज कल लियाकत और काबलीयतकी कदर नहीं होती। लायकोंकी बड़ी बुरी तरह बेकदरी हो रही है और इस गीले कूड़े-कचरेमेसे न जाने कितने छत्रक (कुकरमुत्ता) जमीन फोड़कर निकल रहे हैं।

अब्दुल्ला—बेशक, आप सच कहते हैं। हिदायत अलीखाँ खानखाना बन बैठे—क्यों?—इस लिए कि वे बादशाह सलामतके भांजे हैं।

महाबत—वह भांजे हुआ करें, इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन इतनी बड़ी फौजकी सिपहसालारी आसान काम नहीं हैं। उनके साले इनायत खाँ भी तो उनके साथ ही हैं न ?

अब्दुल्ला—मुमकिन है, हों।

महाबत—इनायत खाँ बेशक सिपाही आदमी है। वह जंग कर सकता है। मालूम होता है, बादशाह सलामतने हिदायत खाँको बराय-नाम सिपहसालार बना दिया है। असली सिपहसालार इनायतखाँ ही है।

अब्दुल्ला—जनाब, अगर किसीको बराय-नाम सिपहसालार बना दिया जाय, तो भी कमसे कम इतना तो जरूर होना चाहिए कि वह बन्दूककी आवाज सुन कर तो डर न जाय !

महाबत—खैर। इस बार मेवाड़की लड़ाईमें सब पता लग जायगा।

अब्दुल्ला—क्या बादशाह सलामतने आपको भी मेवाड़की लड़ाई पर भेजनेके लिए याद फरमाया था ?

महाबत— हाँ, सैयद साहब !

अब्दुल्ला—तब आप इस लड़ाईमें तशरीफ क्यों न ले गये ?

महाबत—बात यह है कि मेवाड़ मेरा वतन है। बादशाह सलामत मुझे बंगाल, गुजरात और दक्खिन जहाँ भेजें, मैं जानेको तैयार हूँ। लेकिन मेवाड़ जीतनेके लिए जाना मैं ठीक नहीं समझता।

अब्दुल्ला—ऐसी हालतमें जब कि मेवाड़ आपका वतन है आपका फरमाना बजा है। अच्छा, तो अब देर हो रही है। मुझे इजाजत दीजिए, आदाब अर्ज करूँ।

महाबत—तसलीम।

[अब्दुल्ला जाता है।]

महाबत—चलो, यह अच्छा ही हुआ कि हिदायतखाँ सिपहसालार हो गये। खूब तमाशा देखनेमे आयगा। यह तो जबरदस्ती किसी भिखमँगेको पकड़ कर बढ़िया सजे हुए घोड़ेपर सवार करा देना है।

[जाते हैं।]

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—मोगलोंकी छावनी। **समय**—दोपहर।

[मोगल सेनापति खान-खाना हिदायत अली खाँ बहादुर अपने सरदार हुसैनके साथ बाते कर रहे हैं।]

हिदायत—हे: हुसैन ! इन काफिरोको फतह करना तो मुरब्बा खानेसे भी आसान है।

हुसैन—जनाब आली ! आप इस कामको जितना आसान समझ रहे है हकीकतमें वह उतना आसान नहीं है। लगातार सात सौ बरससे मुसल्मानी सल्तनतके सामने यह छोटीसी रियासत बराबर सिर ऊँचा किये खड़ी रही है। यहाँ तक कि खुद अकबर बादशाह भी उसका सिर न झुका सके।

हिदायत—हे: अकबरके पास कोई अच्छा सिपहसालार न होगा। हाँ उस वक्त अगर खानखाना हिदायत अली खाँ होते तो दिखला देते !

हुसेन—क्यो जनाब ! मानसिंह क्या कुछ कम थे ?

हिदायत—हे: बेचारे मानसिंहको क्या आता था ? वह क्या लड़ सकता था ?

[बावर्ची आता है।]

बावर्ची—खुदावन्द ! खाना तैयार है।

हिदायत—अगर मानसिंह सिपहसालार हो सकता था, तो हमारे बावर्ची जाफर मियाँ भी सिपहसालार हो सकते हैं। क्यों जी जाफर मियाँ!

जाफर—हुजूर! खाना तैयार है।

हिदायत—तुम फौजके साथ लड़ सकते हो?

जाफर—हुजूर! मुरगीका कोफ़्ता।

हिदायत—हाँ हाँ, हम समझते हैं; तुमने बहुत अच्छा किया जो मुरगीका कोफ़्ता तैयार किया। लेकिन मैं पूछता हूँ कि तुम जंग कर सकते हो?

जाफर—कबाब? हूजूर! वह भेड़ेका है।

हिदायत—बहुत ठीक! अब हम भी यहाँ भेड़ेका कबाब बनायँगे। अच्छा, तुम चलो हम आते हैं।

[जाफर जाता है।]

हिदायत—हुसैन! अब यहाँ भेड़ेका कबाब बनेगा।

हुसैन—किस भेड़ेका?

हिदायत—किस भेड़ेका? इन्हीं राजपूतोंका। ये भी तो भेड़े ही हैं।

हुसैन—जनाब, माफ कीजिए। इस बारेमें मैं आपकी रायसे इत्तफाक नहीं करता।

हिदायत—हुसैन! अभी तुम्हें बहुत कुछ सिखाने पढ़ानेकी जरूरत है। अब तुम हमारे साथ आये हो। जरा अच्छी तरह सीख लो कि लड़ना किसे कहते हैं। आगे चलकर काम आयेगा।

हुसैन—बहुत बेहतर जनाब! बड़े बड़े हाथी तो बह गये, अब देखना है कि 'मच्छर' महाशय क्या करते हैं!

हिदायत—हुसैन ! मैं देखता हूँ कि तुम बहुत गुस्ताख और बे-अदब होते जा रहे हो । तुम जानते नहीं, मैं सिपहसालार हूँ । अगर चाहूँ तो अभी तुम्हारा सिर कटवा डालूँ । [जाता है ।]

हुसैन—जी हाँ जनाब ! मैं जानता हूँ कि आप सिपहसालार हैं ।

हिदायत—हाँ, हमेशा याद रखना कि मैं सिपहसालार हूँ ।

हुसैन—जी हाँ, मैं हमेशा याद रक्खूँगा । लेकिन मेवाड़ फतह करना—

हिदायत—फिर वही मेवाड़ फतह करनेकी बात ! हुसैन, तुम मेरे दोस्त हो, इसी लिए मैं तुमसे कहता हूँ कि मेरी नजरमें मेवाड़ फतह करना एक चुटकी बजाने जैसा काम है ।

हुसैन—यदि ऐसा है तो उसे एक बहुत बड़ी चुटकी कहनी चाहिए

हिदायत—नहीं, बहुत ज्यादा बड़ी नहीं है । अच्छा जाओ, अब हम खाना खाने जाते हैं । (हुसैन जाना चाहता है । हिदायत उसे फिर बुलाता है ।) हाँ हुसैन ! जरा एक बात सुनते जाना । देखो, हमेशा इस बातका ख्याल रखना कि हम सिपहसालार हैं ।

हुसैन—बहुत बेहतर जनाब ।

हिदायत—जाओ ।

[हुसैन जाता है ।]

हिदायत—भला इन काफिरोंको जीतना क्या मुश्किल है ! इनके साथ तो लड़नेकी भी नौबत न आवेगी । जहाँ तोपों और बन्दूकोंकी दो चार आवाजें हुईं, सब भागते नजर आवेंगे । किसीका पता भी न लगेगा ।

[अकड़ते हुए प्रस्थान]

छट्ठा दृश्य ।

स्थान—उदयपुरके उदयसागरका किनारा। **समय**—प्रभात।

[मेवाड़की राजकन्या अकेली घूमती हुई गा रही है।]

राग कालिंगड़ा।

करूँगी आज अनोखा प्यार० ॥
आई हूँ मैं तुम्हें प्रेमकी भिक्षा दूँगी दान।
आओ भिक्षुक लाई हूँ यह, प्रेमपूर्ण मन प्राण ॥
देखूँ आज तुम्हारे मुखपर, क्षणभर हास्यविलास।
प्रेमदान कर मैं रखती हूँ, इतनी ही अभिलाष ॥
नहीं रहेगा विरस हृदय यह, नहीं अश्रु-संताप।
प्रेमनीर बरसाऊँगी जब, सहित सुहास्यालाप ॥
भग्नगृहोंमें नहीं सुनूँगी, और दीर्घ निश्वास ।
होगी वहाँ वेदना कैसे, जहाँ प्रेमका वास ॥
आज किसीको दिया प्रेम है, हरकर उसका शोक।
इससे बहती नई पवन यह, फैला मधुरालोक ॥

[एक अन्धे बालकके साथ एक भिखारिणी आती है।]

भिखारिणी—दाताकी जय हो !

मानसी—क्यों जी यह तुम्हारा लड़का है?

भिखारिणी—नहीं, यह मेरी बहनका लड़का है, यह जन्मसे ही अन्धा है। इसकी माँ मर गई है।

मानसी—इसका बाप है?

भिखारिणी—है तो, पर परदेश गया है।

मानसी—आहा! कैसा प्यारा लड़का है। क्या यह हमें दोगी?

भिखारिणी—यह मुझे छोड़कर अकेला नहीं रह सकता सरकार।

मानसी—अच्छा, तुम इसे अपने ही पास रक्खो। पर इसे रोज मेरे पास ले आया करो। यह लो। (एक अशरफी देती है।)

भिखारिणी—सरकारकी जय हो, राज बना रहे ।

[बालकको साथ लेकर भिखारिणी चली जाती है ।]

मानसी—इस भिखारिणीका 'जय हो' कहना कितना मधुर जान पड़ता है । यह जय-भेरीसे भी प्रबल, माताके आशीर्वादसे भी अधिक प्रेमपूर्ण और बालकके मुँहसे पहले-पहल निकली हुई वाणीसे भी बढ़कर मधुर है ।

[अजयसिंह आते हैं ।]

अजय—मानसी !

मानसी—अजय ! आओ आओ । इस समय मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ । मेरी इस प्रसन्नताका कुछ अंश तुम भी लो ।

अजय—तुम्हारी इस प्रसन्नताका क्या कारण है ?

मानसी—मेरी प्रसन्नता परिपूर्ण है । शरत्कालकी नदीसे भी बढ़कर परिपूर्ण है । आज एक भिखारिणी मुझे आशीर्वाद दे गई है।

अजय—भला संसारमें ऐसा कौन होगा जो तुम्हें हृदयसे आशीर्वाद न देगा। मैं नित्य ही गलियों और बाजारोंमें लोगोंके मुँहसे मेवाड़की राजकुमारीकी प्रशंसा सुना करता हूँ ।

मानसी—तुम रोज सुनते हो ? यदि ऐसा होता तो अजय, क्या मैं एक दिन भी उसे न सुन सकती ?

अजय—एक दिन घरसे बाहर निकलो, अवश्य सुन सकोगी ।

मानसी—मैं तो घरसे बाहर निकलती हूँ। अजय ! मैंने यहाँ एक अतिथिशाला खोल रक्खी है। वहाँ मैं नित्य जाती हूँ और अपने हाथसे अतिथियोंको भोजन कराती हूँ । उन्हें बिना अपने हाथसे खिलाये मेरा जी नहीं मानता ।

अजय—मानसी! तुम्हारा जीवन धन्य है। मानसी! आज मैं तुमसे विदा होनेके लिए आया हूँ।

मानसी—क्यों? तुम कहाँ जाओगे?

अजय—युद्धमें।

मानसी—कब जाओगे?

अजय—कल सबेरे।

मानसी—वहाँसे कब लौटोगे?

अजय—कुछ ठीक नहीं। यह भी नहीं कह सकता कि लौटूँगा या नहीं।

मानसी—क्यों?

अजय—सम्भव है कि युद्धमें मारा जाऊँ।

मानसी—ओह! (सिर नीचा कर लेती है।)

अजय—मानसी! यदि मैं न लौटा तब?

मानसी—तब फिर क्या होगा?

अजय—तुम्हें दुःख होगा या नहीं?

मानसी—होगा।

अजय—इतनी उदासीनता! मानसी! तुम जानती हो कि—

मानसी—मैं क्या जानती हूँ?

अजय—यह कि तुम पर मेरा कितना प्रेम है।

मानसी—हाँ, यह तो मैं जानती हूँ कि मुझ पर तुम्हारा बहुत प्रेम है।

अजय—क्या मुझ पर तुम्हारा प्रेम नहीं है?

मानसी—है।

अजय—नहीं, तुम्हारा प्रेम किसी और पर है !

मानसी—है, मनुष्य-मात्र पर है ।

अजय—निठुर ! निर्दयी !

मानसी—क्यों अजय! क्या तुम चाहते हो कि मैं केवल तुम्हीं पर प्रेम करूँ और किसी पर प्रेम न करूँ ? क्या तुम अकले ही मेरे सारे हृदय पर अधिकार कर लेना चाहते हो ? तब तो तुम बड़े ही स्वार्थी जान पड़ते हो ।

अजय—मानसी ! क्या तुम अभी तक इतनी अनजान और अबोध हो ?

मानसी—तुम मुझसे नाराज क्यों होते हो अजय ? इसमें मेरा क्या अपराध है ? क्या मनुष्य मात्र पर प्रेम करना ही अपराध है ? यदि यही अपराध हो तो तुम मुझे उसका दण्ड दो । मैं उसे भोग-नेके लिए तैयार हूँ ।

अजय—तुम्हें दण्ड दूँगा—मैं ?

मानसी—हाँ तुम दण्ड दो । अजय ! आज तुम युद्ध पर जा रहे हो । इस युद्धमें तुम जितनी ही अधिक हत्या करोगे, लोग उतनी ही अधिक तुम्हारी प्रशंसा करेंगे । उसी तरह मैं जितना ही अधिक प्रेम करूँगी, क्या उतना ही अधिक मेरा अपराध होगा ?

अजय—मानसी ! तुम सारे संसार पर प्रेम करो, अपने उदार हृदयमें सारे विश्वको रख लो । अब मैं तुमसे कुछ न कहूँगा । मैं बड़ा मूर्ख हूँ जो तुम्हारे आकाशके समान उदार हृदयको अपने तुच्छ और क्षुद्र हृदयमें बन्द कर रखना चाहता हूँ । मुझे क्षमा करो । मानसी ! अच्छा अब मैं विदा होता हूँ ।

मानसी—अच्छा अजय ! जाओ। सारे जगत्में अन्याय और अत्याचार छाया हुआ है। उसे दूर करनेके लिए कभी कभी युद्ध करना अनिवार्य्य हुआ करता है। लेकिन युद्ध बड़ी ही निष्ठुरताका काम है। उसमें जहाँतक हो सके, अपने आपको पवित्र रखना।

[अजयसिंह जाते हैं।]

मानसी—जाओ अजय, तुम रण-क्षेत्रमें जाओ। मेरी शुभ-कामना कवचकी तरह तुम्हारी रक्षा करे। पर जो लोग युद्धमें मारे जायँगे, उनका क्या होगा ? क्या उनकी स्त्रियाँ, मातायें और कन्यायें भी ठीक इसी प्रकार भगवानसे उनके मंगलके लिए प्रार्थना न करती होंगी ? न जाने उनमेंसे कितनोंकी प्रार्थनायें निष्फल होंगी और कितनोंकी साधनायें व्यर्थ होंगी। क्या इसका कोई प्रतिविधान नहीं है ? (आँखोंमें आँसू भरकर आकाशकी ओर देखती है। थोड़ी देर बाद उसका मुख प्रसन्न हो जाता है और वह ताली बजाती हुई कहती है)— अच्छा, अब मैं भी एक काम करूँगी। जो युद्धमें मरेंगे उनकी तो मैं कोई सहायता न कर सकूँगी। पर हाँ, जो लोग घायल होंगे, उनकी सेवा शुश्रूषा करूँगी। बस, मैं यही काम करूँगी। इसमें हर्ज ही क्या है ? मैं यही करूँगी।

[रानी रुक्मिणीका प्रवेश।]

रानी—कुछ सुना मानसी ?

मानसी—क्या ?

रानी—तुम्हारे पिता युद्धमें गये हैं।

मानसी—हाँ, सुना है।

रानी—मुगलोंके साथ युद्ध करने गये हैं !

मानसी—हाँ, सुना है।

रानी—वाह ! किस उदासीनतासे तुम कह रही हो—'हाँ सुना है,' मानो यह कोई मक्खन खानेके समान सुकोमल समाचार है। जानती हो, युद्धमें हजारों लोग मारे जाते हैं?

मानसी—हाँ, हो सकता है।

रानी—हो सकता है नहीं, होता है। इस बार बादशाहकी सेना-के साथ युद्ध होगा। अबकी बार सर्वस्व गया समझो। जो लोग युद्धमे गये हैं वे तो मारे ही जायँगे और जो लोग नहीं गये हैं, उनकी भी न जाने क्या दशा होगी।

मानसी—तब भला इसमे मै क्या करूँगी?

रानी—मैंने तुम्हारे ब्याहकी बातचीत पक्की की थी। पर अब इधर ब्याहका समय न मिलेगा। ऐसी गड़बड़ीमें कहीं ब्याह होता है?

मानसी—नहीं सही।

रानी—नहीं सही? यदि ब्याह न होगा तो क्या होगा?

मानसी—अच्छा ही होगा।

रानी—भला, यह भी कभी हो सकता है? लड़कियोंका ब्याह हुए बिना कहीं काम चल सकता है? जोधपुरके राजकुमारके साथ तुम्हारे ब्याहकी बातचीत पक्की की गई थी। पर अब ब्याह न हो सकेगा। सब जायँगे, सब मरेंगे। पहले ब्याह करके तब लड़ाई छेड़ते; पर राणाजीने मेरी बात ही न मानी।

मानसी—माँ, तुम चिन्ता न करो। मैंने अपने लिए एक ब्याहसे भी बढ़कर काम करनेका निश्चय किया है।

रानी—वह क्या?

मानसी—मैं युद्धक्षेत्रमें जाऊँगी।

रानी—किस लिए?

मानसी—माँ, तुमने अभी कहा था न कि युद्धमें बहुतसे लोग मरते हैं! जो लोग मर जायँगे उनकी तो मैं कुछ भी सहायता न कर सकूँगी, पर हाँ जो लोग घायल होंगे, मैं उनकी सेवा करूँगी।

रानी—बुरा हुआ! जान पड़ता है, अजय तुम्हें यही बात सिखला गया है।

मानसी—नहीं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। अजय लोगोंको मारने जाते हैं; पर मैं रक्षा करने जाऊँगी।

रानी—नहीं। भला यह भी कहीं हो सकता है?

मानसी—यह तो बहुत अच्छी तरह हो सकता है।

रानी—नहीं, तुम जाने न पाओगी।

मानसी—माँ, तुम निश्चिन्त रहो। मैं अवश्य जाऊँगी। तुम तो जानती ही हो, कि जब मुझे कर्तव्य पुकारता है तब मैं किसीकी बात नहीं सुनती। अब तुम जाओ। मैं चलनेकी तैयारी करूँगी।

रानी—तुम किसके साथ जाओगी?

मानसी—अजयसिंहकी सेनाके साथ।

रानी—जो सोचा था, वही हुआ। राणाजी भी इस समय चले गये। अब इसे कौन समझावे!

मानसी—यदि पिताजी यहाँ होते तो वे इस कामसे मुझे कभी न रोकते। मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। वे बहुत दयालु हैं।

रानी—वे तुम्हें किसी बातके लिए मना नहीं करते थे, इसीसे तो तुम इतनी मनमानी करती हो। गया—सर्वस्व गया। मैं जानती हूँ, कोई न कोई भारी उपद्रव अवश्य होगा।

मानसी—माँ, तुम जरा भी चिन्ता न करो। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर अत्याचार करता है; जहाँ तक हो सकेगा मैं उस अत्या-

चारको कम करूँगी । माँ, अब तुम जाओ कोई चिन्ताकी बात नहीं है ।

रानी—अब पूरा पूरा कलियुग आगया ।

[रानी जाती है ।]

मानसी—यह इच्छा मेरे मनमें किसने उत्पन्न की ? पहले यह ज्योति मेरे अन्त:करणके एक कोनेमे झिलमिला रही थी; पर अब हृदयमें उसका पूरा पूरा प्रकाश छा गया है । यह एक नया उत्साह है ! परम आनन्द है ! ब्याहका सुख इसके सामने क्या चीज है !

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—मेवाड, युद्धक्षेत्र । **समय**-सन्ध्या ।

[हिदायतअली एक खेमेमे बैठे हुए हुसैनसे बातें कर रहे हैं । बाहर युद्धका कोलाहल हो रहा है । दरवाजे पर दो सिपाई नगी तलवार लिये खडे है ।]

हिदायत—हुसैन ! तुमने कुछ अन्दाज लगाया कि मेवाड़की फौज कितनी होगी !

हुसैन—करीब पचास हजारके होगी ।

हिदायत—हाँ ँ ँ ँ, लेकिन राजपूत अभीतक भाग नहीं रहे हैं ।

हुसैन—जी नहीं जनाब ।

हिदायत—सुबहसे लड़ रहे है; मगर अभीतक भागते नजर नहीं आते ?

हुसैन—नहीं, उन्होंने ठान लिया है कि लड़ेंगे और खूब जम कर लड़ेंगे ।

हिदायत—मालूम होता है वे लोग कुछ कुछ लड़ना जानते हैं।

हुसैन—जी हाँ, कुछ आसार तो ऐसे ही नजर आते हैं।

हिदयत—यह तो राजपूतोंकी ही आवाज आ रही है। हमारे सिपाही तो कुछ चिल्लाते-बिल्लाते ही नहीं। वे लड़ते तो हैं न ?

हुसैन—लड़ेंगे क्यों नहीं? जरा एक बार बाहर निकल कर आप ही क्यों नहीं देख लेते ? आप तो सिपहसालार हैं।

हिदायत—हाँ, मैं सिपहसालार तो जरूर हूँ। मगर खेमेसे मेरे बाहर निकलनेकी जरूरत ही न पड़ेगी। मेरा साला इनायत खाँ अकेला ही इन लोगोंके लिए काफी है। ये बेचारे मेरे साथ क्या लड़ेंगे ?

हुसैन—हाँ जनाब, यह तो ठीक ही है। पर देखिए राजपूत लोग फिर गर्ज रहे हैं। यह लीजिए, फिर उन्हींकी आवाज आई। जनाब! आसार तो अच्छे नजर नहीं आते।

हिदायत—जरा बाहर जाकर देखो तो सही कि क्या हो रहा है।

हुसैन—बहुत बेहतर।

हिदायत—मगर नहीं, तुम यहीं रहो। मुझे यह बहुत ही बुरी आदत पड़ गई है कि शामके बाद मैं अकेला नहीं रह सकता हूँ।

हूसैन—हाँ, इसे खराब आदतके सिवा और कुछ कह ही क्या सकते हैं!

हिदायत—यह देखो, फिर शोर हो रहा है।

हुसैन—यह तो और भी नजदीक मालूम होता है।

हिदायत—क्या कहा ?

हुसैन—जनाब! मालूम होता है, कोई इधर ही आ रहा है।

हिदायत—हैं! कोई आता है? (हुसैनको पकड़ लेता है।)

[एक सिपाई आता है ।]

हिदायत—क्या खबर लाये ?

सिपाही—खुदावन्द ! फौजदार शमशेरखाँ मारे गये।

हिदायत—ऐं !

हुसैन—और बाकी दूसरे अफसर ?

सिपाही—लड़ रहे हैं।

हिदायत—इनायतखाँ तो बचे हुए हैं न ?

सिपाही—जी हूजूर ।

हुसैन—अच्छा जाओ।

[सिपाही जाता है ।]

हिदायत—सचमुच कोई खराबी हुआ चाहती है।

हुसैन—जी हाँ हुजूर ! मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है । उस रोज आप फरमाते थे कि मेवाड़ फतह करना चुटकी बजाने जैसा आसान काम है। पर अब तो आप समझ गये होंगे कि यह कैसा कठिन काम है। अब तो आपको इस बन्देकी बात ठीक मालूम होती है न ? यह लीजिए वे और भी नजदीक आ रहे हैं।

हिदायत—बेशक । इस लड़ाईमें क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता ।

हुसैन—जी हाँ जनाब, कुछ भी नहीं कहा जासकता।

[दूसरा सिपाही आता है।]

हिदायत—क्या खबर है ?

सिपाही—हुजूर ! शाही फौजें बाईं ओरसे भाग रही हैं।

हिदायत—क्यों ?

हुसैन—शायद यह शोर उन्हींका है।

सिपाही—जी हाँ।

[सिपाही जाता है।]

हुसैन—जनाब सिपहसालार साहब ! आप जरा खेमेसे बाहर तो निकलिए। कमसे कम आपको देखकर सिपाहियों और अफसरोंकी हिम्मत तो बढ़ेगी। आप तो सिपहसालार हैं। जरा बाहर निकलिए।

हिदायत—हाय ! मैं सिपहसालार हूँ ! (बहुत ही हताशासूचक सूरत बना लेता है।)

[तीसरा सिपाही आता है।]

सिपाही—खुदावन्द ! इनायतखाँ मारे गये !

हिदायत—ऐं ! यह क्या कह रहा है ? भला यह भी कभी मुमकिन है ? फिर राजपूतोंका शोर सुनाई पड़ता है। लो, ये तो बहुत ही नजदीक आ पहुँचे।

हुसैन—जनाब आप एक बार बाहर निकलिए तो सही।

हिदायत—अब वक्त ही कहाँ है ? यह सुनते हो ?

हुसैन—जी हाँ सुन रहा हूँ। शोर बराबर बढ़ता ही जाता है। यह लीजिए, और भी नजदीक आ गया।

(चौथा सिपाही आता है।)

सिपाही—जनाब, सब चौपट हुआ।

हिदायत—यह तो मैं पहले ही जानता था। और कुछ ?

हुसैन—और अब क्या होगा ? चौपट होनेके बाद और क्या हो सकता है ?

सिपाही—हुजूर सारी शाही फौजें भाग रही हैं और राजपूत बढ़ते चले आ रहे हैं।

हिदायत—हुसैन ! मालूम होता है दुश्मन आ पहुँचे।

[नैपथ्यसे 'भागो भागो' सुन पड़ता है।]

हिदायत—किस तरफ ?

हुसैन—इस तरफ ।

[हुसैन एक तरफ़ भागता है और हिदायत घबरा कर दूसरी तरफ दौड़ता है । इतनेमें उसे गोली लगती है और वह गिर पड़ता है । कई राजपूतोंके साथ मुगलोंका झण्डा हाथमें लिये हुए, अजयसिंह आते हैं ।]

अजयसिंह—जय ! मेवाड़के राणाकी जय !

सैनिक—जय ! मेवाड़के राणाकी जय !

हिदायत—(दोनों हाथ उठाकर) दोहाई ! मुझे न मारना । मै अभी जिन्दा हूँ । मुझे मारो मत, कैद कर लो ।

अजय—तुम कौन हो ?

हिदायत—मै शाही फौजका सिपहसालार हूँ ।

अजय—सिपहसालार ! इस वक्त लड़ाईका मैदान छोड़कर तुम खेमेमें क्यो पड़े थे ?

हिदायत—ऐं मै—ऐ—मै ? इसकी एक बड़ी माकूल वजह है । लेकिन इस वक्त याद नहीं आ रही है । तुम लोग मुझे मारो मत, मेरी जान बख्श दो ।

अजय—देखो, यह गीदड़ आया है मेवाड़ जीतने ! तुम डरो मत । तुम्हारी जान नहीं ली जायगी । सारे राजपूतानेमें मेवाड़-विजयकी घोषणा होने दो ।

हिदायत—हाँ, होने दो । इसमें मुझे कोई उज्र नहीं है ।

[अपने सैनिकोंके साथ अजयसिंह जाते हैं ।]

हिदायत—जान बची ी ी ी ! प्यास ! प्यास ! पानी ! पानी !

अन्य दृश्य ।

स्थान—युद्धक्षेत्र । **समय**—आधीरात ।

[जगह जगह मुरदों और घायलोंके ढेर लगे हुए हैं। कई सैनिकोंको साथ लिये हुए मानसी वहाँ घूम रही है। किसी किसी सैनिकके हाथमें मशाल है ।]

मानसी—देखो कुछ लोग उधर जाओ । मैं इधर देखती हूँ ।

[कई राजपूत सैनिक चले जाते हैं ।]

मानसी—ओह ! चारों ओर कितनी हत्या हुई है ! यह रोना और चिल्लाना ! कैसा करुण दृश्य है ! हे परमेश्वर ! क्या तुम्हारे राज्यमें यही नियम है कि मनुष्यको मनुष्य खाय ? क्या पृथ्वीमेंसे कभी इस हिंसाका अन्त न होगा ? मनुष्य बे-रोक-टोक दूसरे मनुष्यकी हत्या करता है, और दयामय ! तुम चुपचाप खड़े तमाशा देखते हो ! नीले आकाशको भेदकर सारे विश्वमें पापका विकट और भैरव विजय-हुँकार उठ रहा है, तब भी तुम उसका गला नहीं दबाते ! यह कैसा भीषण, करुण और मर्म्मभेदी दृश्य है ! ये मुरदोंके ढेर ! देखे नहीं जाते ! यह घायलोंकी चिल्लाहट ! सुनी नहीं जाती !

पहला घायल—हाय रे मरे !

मानसी—बताओ भाई तुम्हें कहाँ चोट लगी है ? आहा ! बेचारेको बड़ा कष्ट है !

प० घायल—यहाँ, यहाँ । माँ, तुम कौन हो ?

मानसी—चुप चाप पड़े रहो, बोलो मत । (गोली लगे हुए स्थान पर पट्टी बाँधती है और एक सैनिकको इशारा करती है । वह एक कटोरी लाकर देता है । मानसी उस घायलसे कहती है)— कोई डरकी बात नहीं है, लो दवा पीओ । (वह घायल दवा पी लेता है । पास ही एक दूसरा घायल चिल्ला उठता है, तब उस दूसरे घायलके पास जाकर कहती है)—चुपचाप पड़े

रहो। तुम्हारी शुश्रूषाका प्रबन्ध होता है। (एक राजपूत सैनिकको संकेत करती है। वह चला जाता है तब उस दूसरे घायलसे कहती है)—तुम चुप चाप पड़े रहो; मैं अभी आती हूँ।

तीसरा घायल—हे राम! अब तो प्राण निकल जायँ तो अच्छा हो। बड़ा दर्द है।

मानसी—(उस तीसरे घायलके पास जाती है और उसे देखकर कहती है) अभी तो इसमें प्राण है। (एक सैनिकसे) इसे देखो।

हिदायत—प्यास! प्यास! पानी! पानी!

मानसी—(हिदायतके पास जाती है और एक सैनिकसे पानीका गिलास लेकर उसे देती हुई कहती है)—यह लो, पानी पीओ।

हिदायत—(पानी पीकर) या ख़ुदा! जान बची!

[कई सैनिकोंके साथ अजयसिंह आते हैं।]

अजय—इस अँधेरेमें तुम कौन हो?—मेवाड़की राजकन्या?

मानसी—कौन? अजय?

अजय—(पास आकर) हाँ मानसी।

मानसी—अजय! अपने सैनिकोसे कहो कि वे घायलोंकी सेवा करनेमें हमारी सहायता करें। हमारे आदमी कम है।

अजय—उन्हे क्या काम करना होगा?

मानसी—वे घायलोंको उठा उठा कर सेवा-शिविरमे ले जायँगे।

अजय—बहुत ठीक। सैनिको! इन घायलोंको उठा ले चलनेका प्रबन्ध करो।

[सैनिक खटोले लेने चले जाते हैं।]

मानसी—कैसा आनन्द है अजय!

अजय—कैसी ज्योति है मानसी!

मानसी—कहाँ?

अजय—तुम्हारे मुखपर !—विकट आर्तनादकी इस जन्म-भूमिमें, मृत्युके इस लीलाक्षेत्रमें, इस भयानक स्मशानमें, इस तारों भरी रातमें, यह कैसी ज्योति है ! तूफानमें लहरें मारते हुए समुद्र पर प्रभातके सूर्य्यकी तरह, घने काले मेघोंमें स्थिर नीले आकाशकी तरह, दुःखके ऊपर करुणाकी तरह—यह कैसी मूर्ति है ! यह सौन्दर्य्य ! यह गरिमा ! यह विस्मय ! बड़ा ही अपूर्व है !—मानसी ! (हाथ पकड़ लेते हैं ।)

मानसी—अजय !

आठवाँ दृश्य।

स्थान—उदयपुरका राजपथ। **समय**—प्रभात।

[कई चारण गाते हुए आते हैं। पीछेसे अमरसिंह, गोविन्दसिंह, अजयसिंह और अन्यान्य सामन्तगण आते हैं।]

प्रभाती।

जागो जागो हे पुरनारी० ॥
समरहिं जीति अमर हैं आवत, रखि मरजाद तिहारी ॥
सूर्यवंशको नाश करन हित, आई सेना भारी ।
गये जवन रंजित करि केवल, हमरी छुरी कटारी ॥
गर्व खर्व जवननको करिके, आवत हैं रनधारी ।
दीप्त भई मेवाड़ भूमि है, गरिमा बढ़ी हमारी ॥
है शुभ दिन मेवाड़ महीको नाचो दै दै तारी ।
रहे खेत जो उन हित डारो, निज आँखिनसों वारी ॥

दूसरा अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान–आगरेमे राजा सगरसिंहका घर ।

समय–सबेरा ।

[राजा सगरसिंह और उनके नाती अरुणसिंह बातें कर रहे है ।]

सगर—अरुण ! यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि अमरसिंहने देवारके युद्धमे मुगल-सेनाको घासकी तरह काट कर रख दिया !

अरुण—धन्य राणा अमरसिंह !

सगर—लड़कपनमे अमरसिंह बड़ा गहरा शौकीन और खिलाड़ी था। यह कौन कह सकता था कि वह आगे चलकर ऐसा निकलेगा ।

अरुण—नानाजी ! महर्षि वाल्मीकि भी तो पहले डाकू थे ।

सगर—महर्षि वाल्मीकि कौन ? तुलसीदासके लड़के ?

अरुण—वाह! नानाजी, क्या आपने महर्षि वाल्मीकिका नाम नहीं सुना ? वे एक बड़े भारी महर्षि थे ।

सगर—हाँ ! ऐसी बात ! खयाल तो नहीं आता कि कहीं उन्हें देखा हो ।

अरुण—आप देखेंगे कहाँसे ! वे तो त्रेतायुगमें हुए थे।

सगर—किस युगमें ?

अरुण—त्रेतायुगमें ।

सगर—हाँ ! तब तो हमारे जनमके पहलेकी बात है। पर हाँ नाम सुना है। सुनते हैं, वे बड़े रसिक थे।

अरुण—अजी नहीं ! उन्होंने तो रामायण लिखी है।

सगर—रामायण लिखी है ! रामायण तो बहुत अच्छी किताब है।

अरुण—क्यों नानाजी ! आपने रामायण नहीं पढ़ी ? भगवान् रामचन्द्र हम लोगोंके पूर्व-पुरुष थे। उसमें उन्हींकी कथा लिखी गई है। आप उनके विषयमें कुछ नहीं जानते ? छीः !

सगर—बेटा, मैं पढ़ूँ कहाँसे ? लड़ते लड़ते तो मेरा जनम बीत गया। मुझे पढ़नेका समय ही कहाँ मिला ?

अरुण—क्या आप भी कभी लड़े थे ?

सगर—अह ! मैं बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़ा हूँ। तब तुम्हारा जनम भी नहीं हुआ था।

अरुण—आप किसके साथ लड़े थे ?

सगर—यह तो याद नहीं आता; पर हाँ इतना जरूर याद है कि मैं कई बार युद्धमें गया था। उस समय तुम्हारी माँ—

अरुण—नानाजी मेरी माँ कहाँ है ?

सगर—यह कोई नहीं जानता कि वह कहाँ है। एक दिन सबेरे उठते ही वह 'मेवाड़ मेवाड़' चिल्ला उठी। उसी दिन सन्ध्याके समय हम लोगोंने बहुत ढूँढ़ा, पर कहीं उसका पता नहीं लगा।

अरुण—और मेरे पिताजी ?

सगर—वह तो सदासे ही पागल सरीखा था। एक बार महाराज गजसिंहके साथ गुजरात पर चढ़ाई करने गया और वहीं मारा गया।

अरुण—मैं समझता हूँ कि मेरी माँ यहीं कहीं मेवाड़में होगी।

सगर—हो सकता है।

अरुण—नानाजी! आप मेवाड़ छोड़ कर यहाँ क्यों चले आये? देखिए न, आपके भाई महाराणा प्रतापसिंहने अपने देशके लिए प्राण दे दिये।

सगर—तभी तो बेचारे इतनी छोटी अवस्थामें ही मारे गये। मैं उन्हें मना करता था; पर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। भला बताओ, इसमें मेरा क्या दोष?

अरुण—पर आज कल तो सुनते हैं, गली गली चारण और भाट उनकी कीर्ति गाते फिरते हैं।

सगर—उँह। इससे क्या होता है? वे तो मर गये! अपनी जानसे तो गये! अब वे स्वयं तो अपनी कीर्ति सुनने नहीं आते! मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार जब हम और प्रताप दोनों लड़के थे, एक नेवलेके संग साँपकी लड़ाई हो रही थी। मैंने कह दिया कि नेवला जीतेगा। पर प्रतापने मेरी बात नहीं मानी। साँपके माथे पर लक्ष्य करके नेवला कभी इधर झपटता था और कभी उधर। और साँप फुंकार कर करके फन फटकारता था। अन्तमें हुआ यही कि नेवलेकी पकड़ साँपके सिर पर भरपूर बैठ गई और साँप उसी जगह सिर पटक पटक कर मर गया। भाई, नेवलेका तो काम ही है साँप-को मारना। साँप कब तक उसके सामने ठहर सकता है? इसी लिए मैंने नेवलेका पक्ष लिया था; और प्रतापने लिया था साँपका पक्ष। इस वक्त भी वही बात है।

अरुण—लेकिन नानाजी, इस देवारकी लड़ाईमें ?

सगर—भैया मेरे ! वह ठहरा रक्तबीजका वंश, कहाँ तक काटोगे ? और फिर अगर मुसलमानोंकी संख्या घट जाय तो वे बहुतसे हिन्दुओंको मुसलमान बना लेंगे और फिर लड़ेंगे। पर हिन्दू तो उनकी तरह मुसलमानोंको हिन्दू बनायेंगे नहीं। मुसलमानोंका हिन्दू क्या करेंगे ? जो लोग एक बार किसी तरह मुसलमान हो जाते हैं, उन्हें भी तो वे फिरसे किसी तरह हिन्दू नहीं बनाते। बस इसी जगह हिन्दू भूल करते हैं।

अरुण—कैसी भूल ?

सगर—देखो न, तुम्हारे मामा महाबतखाँ कितने सहजमें मुसलमान हो गये। जरा देखें तो कि इस तरह उनका अब्दुल्ला कैसे हिन्दू होता है। वह कभी हिन्दू हो ही नहीं सकता।

अरुण—नानाजी ! तब फिर आप भी मुसलमान क्यों न हो गये ?

सगर—यहीं तो तुम्हारे नानाजीकी हिम्मत नहीं पड़ी। मेरे लड़केमें बड़ा साहस था। उसने जरा भी पशोपेश नहीं किया। यह अवश्य है कि मैंने पहलेहीसे उसका बहुतसा काम कर रक्खा था और उसका रास्ता साफ कर दिया था। अगर मैं साहस करके मुगलोंके पक्षमें न चला आता तो महाबतखाँको मुसलमान होनेकी हिम्मत न पड़ती।

अरुण—नानाजी ! आपको तो मुसलमान ही हो जाना चाहिए था। जिस हिन्दूने रामायण नहीं पढ़ी, उसे मुसलमान ही हो जाना चाहिए।

सगर—उँह ! रामायणमें क्या रक्खा है ? सब चंडूखानेकी गप्पें हैं।

[मुगल-सेनापति सैयद अब्दुल्लाका प्रवेश।]

सगर—अब्दुला साहब! आइए आदाब!

अब्दुल्ला—आदाब अर्ज़, राणा साहब!

सगर—राणा कौन है?

अब्दुल्ला—आप राणा हैं।

सगर—भला मैं कहाँका राणा?

अब्दुल्ला—मेवाड़के।

सगर—सो कैसे? मेवाड़के राणा तो अमरसिंह हैं।

अब्दुल्ला—पर शाहंशाह सलामतने अब तो आपको राणा बना दिया है।

सगर—इसका क्या मतलब?

अब्दुल्ला—उनका हुक्म है कि आप अभी चित्तौर चले जायँ।

सगर—चित्तौर क्यों?

अब्दुल्ला—वहीं आपकी राजधानी है।

सगर—तब अमरसिंहकी राजधानी कहाँ रहेगी? उदयपुरमें?

अब्दुल्ला—वे तो अब राणा ही नहीं हैं। बादशाह सलामतने उन्हें गद्दीसे उतार दिया है।

सगर—पर वे गद्दी कैसे छोड़ेंगे?

अब्दुल्ला—उनसे जबर्दस्ती गद्दी छुड़ाई जायगी।

सगर—क्या मुझे चल कर उनके साथ लड़ना पड़ेगा? नहीं साहब, मैं राणा नहीं बनना चाहता।

अरुण—क्यों, आप तो अभी कहते थे कि हम लड़ना-भिड़ना खूब जानते हैं और लड़ाई लड़ते लड़ते ही हमारा जनम बीत गया है। अब चलके लड़िए।

सगर—चुप रह लड़के, तुझसे कौन पूछता है! (अब्दुल्लासे) नहीं, जनाब सैयद साहब! मैं लड़ भिड़ न सकूँगा। इसी लड़ने-भिड़नेके डरसे तो मैंने अपने आपको चुपचाप मुगलोंके सुपुर्द कर दिया है। और फिर अगर मुझे लड़ना ही होगा तो मैं अपने देशकी तरफसे न लड़कर उलटे उस पर चढ़ाई करने क्यों जाऊँगा?

अब्दुल्ला—नहीं जनाब, आपको लड़ना भिड़ना नहीं पड़ेगा। और अगर लड़नेकी जरूरत ही पड़ी तो हम लोग खुद लड़ लेंगे। आपको मेहरबानी करके सिर्फ राणा बनना पड़ेगा और चित्तौरमें रहना पड़ेगा।

सगर—और अगर अमरसिंहने चित्तौर पर चढ़ाई कर दी तो?

अब्दुल्ला—नहीं, वे चढ़ाई न करेंगे। जब आज तक उन्होंने चढ़ाई नहीं की, तो अब क्यों करेंगे?

सगर—वाह सैयद साहब! भला यह भी कोई दलील है? कोई आदमी पहले कभी मरा नहीं, लेकिन क्या सिर्फ इसी लिए वह आगे भी कभी न मरेगा? आपने जो उस दिन शादी की तो क्या आपकी शादी नहीं हुई?

अब्दुल्ला—मैं आपका मतलब नहीं समझा।

सगर—क्यों कि उससे पहले तो आपने कभी शादीकी ही नहीं थी। इस लिए क्या आपकी वह शादी शादी ही नही हुई? भला यह भी कोई सबूत है? (अरुणकी ओर देखकर) लड़के, तू हँसता क्यों है? (अब्दुल्लासे) साँपने अगर पहले कभी नहीं काटा तो क्या वह आगे भी कभी न काटेगा?

अब्दुल्ला—जनाब! आप बिगड़ते क्यों है?

सगह—वाह साहब! बिगड़ें नहीं? आप बातें ही ऐसी करते हैं। माफ कीजिए। मैं राणा नहीं होना चाहता।

अब्दुल्ला—खैर साहब, आप बादशाह सलामतके हुजूरमें तो चलिए। आपको जो कुछ कहना हो, वह सब उन्हींकी खिदमतमें गुजारिश कीजिएगा।

सगर—(अच्छा) चलिए जनाब! लेकिन है यह बहुत ही बुरी कायरपनकी और नीचताकी बात। आप लोग मुझे अपनी मुट्ठीमें पाकर जबरदस्ती राणा बनाना चाहते है! देखिए, क्या होता है। लेकिन यह है बड़ी ही ना-इन्साफी और अहसान. फरामोशी! चलो अरुण!

दूसरा दृश्य ।

स्थान—उदयपुरके राज-प्रासादका अन्त पुर ।

समय-प्रभात ।

[मानसी अकेली गाती है ।]

(विहाग ।)

दरसनसो पुलकित जग सारो० ॥
कोमल कर परसत ही तेरो
हुलसत हृदय हमारो ॥
शून्य लोक सब पुन्य भरित हैं
गुंजित हैं दिसि चारो ।
गगन मगन है बरसत मधु है
मधुकर मन मतवारो ॥
फूलत फूल विपिन है विकसित
नदियन नीर निहारो ।
सुधासार शतधा है टपकत
रवि शशिको उजियारो ॥
अरुन बरन है कमल चरन पुनि
केशदाम है कारो ।
लागो रहत देहमें मारुत
नित मलयागिर वारो ॥

कर सोहत फूलनकी माला
अधर माधुरी डारो।
नव वसन्तको भवन भव्य है
सुन्दर सुखद सँवारो॥

[अजयसिंह आते हैं।]

मानसी—कौन ? अजय ?

अजय—हाँ मानसी !

मानसी—तुम इतने दिनों तक क्यों नहीं आये ? क्या तुम्हारा जी अच्छा नहीं था ?

अजय—नहीं तो।

मानसी—मैंने पिताजीसे तुम्हारे विषयमें पूछा था। क्या उन्होंने तुमसे कुछ कहा नहीं ?

अजय—नहीं मानसी ! तुम यहाँ अकेली क्यों हो ?

मानसी—मैं गाती थी और सोचती थी।

अजय—क्या सोचती थीं ?

मानसी—यही सोचती थी कि मनुष्य बड़ा ही दीन है। मेवाड़के युद्धमें मुझे यही एक सबसे बड़ी शिक्षा मिली कि मनुष्य बड़ा ही दुर्बल है। तलवारके एक ही वारसे वह जमीन पर गिर पड़ता है, ज़रा सा ज्वर आते ही वह बालकोंकी तरह असहाय हो जाता है। हाय ! जिसके रक्तमें ही मृत्युका बीज मिला हुआ है वह एक दूसरेसे प्रेम न करके परस्पर घृणा क्यों करता है ? अजय ! तुम टक लगाये मेरा मुँह क्यों देख रहे हो ?

अजय—तुम्हारे मुँह पर मैं आज भी वही स्निग्ध ज्योति देख रहा हूँ जो मैंने उस दिन देखी थी।

मानसी—किस दिन ?

अजय—उस रातको—देवारके युद्धक्षेत्रमें। उस दिन वहाँ अँधेरेमें तुम मूर्तिमती दया ही जान पड़ती थीं। उसी दिन मेरा उन्मुख प्रेम असीम निराशाकी लम्बी साँसमें मिल गया।

मानसी—अजय! निराशा कैसी?

अजय—बतलाऊँ कैसी निराशा? मैंने सोचा कि तुम्हें पकड़नेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। मैंने समझ लिया कि तुम इस संसारकी स्त्री नहीं बल्कि स्वर्गकी देवी हो। तुम्हारे आत्माकी तीव्र ज्योतिको संसार सहन नहीं कर सकेगा, इस खयालसे ईश्वरने तुम्हारे इस सुन्दर शरी-रको उसके ढँके रखनेके लिए आवरणस्वरूप बनाया है। आकाश रंगमंच होता, प्रत्येक नक्षत्र एक एक पवित्र चरित्र होता, चाँदनी एक निर्मल संगीत होती और उस महा नाटककी नायिका होतीं—तुम! मैं तुम्हारे साथ प्रेम करनेके योग्य नहीं हूँ। हाँ, मैं तुम्हारे प्रति भक्ति कर सकता हूँ। उस भक्तिके बदलेमें थोड़ीसी—बहुत ही थोड़ीसी तुम्हारी करुणा चाहता हूँ, क्या तुम मेरी इच्छा पूरी करोगी? (अजयसिंह इतना कह कर मानसीका हाथ पकड़ लेते हैं। इतनेमें ही रानी वहाँ आ पहुँचती है।)

रानी—अजयसिंह!

[मानसीका हाथ छोड़कर अजयसिंह पीछे हट जाते हैं।]

मानसी—क्या है माँ?

रानी—अजय! तुम्हें इस प्रकार एकान्तमें हमारी कन्याके साथ बातचीत न करनी चाहिए।

अजय—मैं क्षमा माँगता हूँ।

मानसी—अजय, क्षमा किस बातकी?

रानी—याद रक्खो, तुम राजकन्या हो। जाओ, अन्दर जाओ।

[मानसी चली जाती है।]

रानी—अजय ! तुम गोविंदसिंहके लड़के हो। तुम्हें हम लोग घरके आदमियोंकी तरह ही समझते हैं। लेकिन तुम्हें अब इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि न तो मानसी ही अब निरी लड़की है और न तुम निरे लड़के हो। अब इस बातका ध्यान रखकर मानसीसे मिला करो। हमारी समझमें तो अब इसके साथ तुम्हारा मिलना-जुलना ही ठीक नहीं है।

अजय—जो आज्ञा।

[अजयसिंह अभिवादन करके चले जाते है।]

रानी—खूब अच्छी तरह समझ लिया है। यदि अजयके साथ मेरी मानसाका ब्याह हो जाता तो बहुत अच्छा होता। लेकिन यह कभी हो सकता है ? नहीं ! हो ही नहीं सकता। (कुछ दृढ़ होकर) और जो बात हो ही नहीं सकती उसकी चिन्ता ही क्यों की जाय ?

[राणा अमरसिंह आते हैं।]

राणा—रानी !

रानी—महाराज ! मैं आपके पास आना ही चाहती थी।

राणा—तुमने मानसीको कुछ कहा सुना है ?

रानी—नहीं तो। क्यों ? क्या हुआ ?

राणा—वह रो रही है।

रानी—(चकित हाकर) रो रही है ?

राणा—जाओ, देखो क्यों रोती है ?

रानी—पागल कहींकी ! मैंने रोनेकी कौनसी बात कही थी ? आप अपनी तो लड़कीका हाल कुछ देखते नहीं, और वह स्वयं कुछ समझती नहीं। वह अभी थोड़ी ही देर पहले अजयसिंहके साथ—

राणा—खबरदार ! मानसीके सम्बन्धमें जरा सोच समझके बात किया करो । जानती हो, वह कौन है ?

रानी—कौन है ?

राणा—हम नहीं जानते कि वह कौन है ? हम तो अभी तक उसे पहचान ही नही सके । कोई नहीं कह सकता वह कौन है और कहाँसे आई है ।

रानी—लो ! इस तरह भी मेरी खराबी और उस तरह भी मेरी खराबी । जाऊँ, देखूँ, लड़की रोती क्यों है । बहुत तंग करती है ! (जाना चाहती है ।)

राणा—और देखो ।

[रानी लौट आती है ।]

राणा—देखो, आगेसे कभी मानसीको कुछ न कहना । स्वर्गकी एक किरण दया करके इस लोकमे उतर आई है । अगर तुम कुछ कहोगी तो वह रूठ करके चली जायगी । (रानी निराशा प्रकट करती हुई जाती है । राणा एक ऊँचे आसन पर बैठते है और आकाशकी ओर देखते हुए कहते है) यह जीवन भी एक स्वप्न है । यह आकाश कैसा नीला, स्वच्छ और गहरा है ! उसके नीचे अलस, उदार और मन्थर मेघ उड़ रहे हैं । प्रकृतिके जीवनमे समुद्रकी तरह लहरे उठती है और फिर बैठ जाती है । यह अलस सौन्दर्य्य कभी कभी बहुत ही भीम आकार धारण कर लेता है । आकाशमें बादल गरजते हैं । पृथ्वी पर जल बरसकर बह जाता है । और इसके बाद पहलेकी तरह सब शान्त और स्थिर हो जाते हैं ।

[गोविन्दसिंह आते है ।]

राणा—कौन ? गोविन्दसिंहजी ! कहिए, इस समय अचानक कैसे आये ?

गोविन्द—महाराज ! मेवाड़ पर फिरसे आक्रमण करनेके लिए मुगलोंकी नई सेना आई है ।

राणा—आ गई? यह तो हम पहलेसे ही जानते थे कि केवल देवार-के युद्धसे इस युद्धकी समाप्ति नहीं होगी। मुगल सारा राजपूताना जब तक उजाड़ न देंगे तब तक न मानेंगे।

गोविन्द—महाराज ! क्या कारण है कि अभी तक हम लोगोंकी ओरसे कुछ तैयारी नहीं हुई?

राणा—क्यो? तैयारीकी आवश्यकता ही क्या है?

गोविन्द—क्या अब महाराज युद्ध न करेंगे?

राणा—क्यों? युद्ध करनेसे क्या होगा?

गोविन्द—महाराज, तब तो मुगल आकर मेवाड़ पर तुरंत ही अधिकार कर लेंगे।

राणा—जब उनका इतना आग्रह है तब फिर इसमे हर्ज ही क्या है?

गोविन्द—क्या सचमुच महाराज युद्ध न करेंगे?

राणा—नहीं। एक बार हुआ, हो गया।

गोविन्द—किसी प्रकारका उद्यम, प्रयत्न या प्रतिवाद किये बिना ही—

राणा—लेकिन इन सब बातोकी आवश्यकता ही क्या है? हमारी समझमें तो यह सब व्यर्थ होगा। देवारके युद्धमें हमारे प्रायः आधेसे अधिक सैनिक नष्ट हो चुके हैं। अब मुगलोंके साथ लड़नेके लिए हमारे पास सेना ही कहाँ है?

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—महाराज, जमीन फोडकर सेना निकल आयगी! सेनाकी आप चिन्ता न करें।

राणा—कौन ?—चारणी ?

सत्य०—हाँ महाराज! मै चारणी हूँ। मैने सुना है कि मुगल फिर मेवाड पर आक्रमण करने आये है। पर मै देखती हूँ कि मेवाड अभी तक निश्चिन्त और उदासीन है। मैने समझा कि कदाचित् अभीतक महाराजकी निद्रा भग नहीं हुई। इसीसे मै महाराजकी निद्रा भग करनेके लिए आई हूँ।

राणा—चारणी! अब हमारी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है। अबकी बार हम सन्धि करेगे।

सत्य०—यह क्यो महाराज? देवारके युद्धकी विजयके उपरान्त सन्धि क्यो? क्या महाराज उस गौरवके शिखरपरसे फिसल कर अपमानके गहरे गढेमे चले जायँगे?

राणा—चारणी! देवारकी विजयकी बात छोड दो। देवारमें हमारी जीत अवश्य हुई है, पर जानती हो, वह जीत किस प्रकार हुई है! उसमे हमारे लगभग आधे सैनिक मारे गये है। इतने वीरोका रक्त बहा कर हमने वह विजय प्राप्त की है।

सत्य०—महाराज! यह कोई चिन्ता या दु खकी बात नहीं है। वीरोका रक्त ही जातिको उर्वर करता है। जिस देशमें वीर मरते हैं, उस देशके लिए दु ख नही करना चाहिए; किन्तु दु खी उन देशोके लिए होना चाहिए जहॉ वीर नही मरते।

राणा—लेकिन हम तो देखते है कि यदि एक बार हमने और भी युद्ध किया, तो भी उसका कोई फल नहीं होगा। इस समरका कभी अन्त न होगा। इन मुट्ठीभर सैनिकोंको लेकर विश्व-विजयी दिल्ली-सम्राट्की सेनाके विरुद्ध खड़े होना पूरा पूरा पागलपन है।

सत्य०——महाराज ! यदि इसको पागलपन कहते हैं तो भी इसका स्थान सारी विवेचनाओं, और सारे विचारोंसे बहुत ऊँचा है। सारा विश्व इसी पागलपनके पैरों पर आकर लोटता है। स्वर्गसे एक गरिमा आकर इस पागलपनके माथे पर मुकुट पहनाती है। जिसे महाराज पागलपन कहते हैं, क्या उस पागलपनके बिना आजतक किसीने कोई बड़ा काम किया है ?

राणा——लेकिन इस युद्धका अन्तिम परिणाम निश्चित मृत्यु——

सत्य०——महाराज ! राणा प्रतापसिंहके पुत्रके लिए यह समझना कठिन नहीं होगा कि अधीनता श्रेष्ठ है या मृत्यु। क्या मरनेके भयसे हम अपना रत्न डाकुओंके हाथमें सौंप दें ? रत्नसे भी कहीं बढ़कर अपने इस सर्वस्व, पूर्व-पुरुषोंके संचित और अनेक शताब्दियोंके स्मारकको क्या केवल प्राणके भयसे बिना युद्ध किये ही शत्रुके हाथमें सौप दें ? अगर वह लेना ही चाहता हो तो मर कट कर ले। और निश्चित मृत्युकी तो बात ही क्या ? वह क्या सभीको एक दिन न आयगी ? महाराज ! उठिए ! मुगल हमारे बिल्कुल पास आ पहुँचे हैं। अब स्वप्न देखनेका समय नहीं है।

राणा——चारणी ! तुम कौन हो ? तुम्हारे वाक्योंमें गर्जन, तुम्हारे नेत्रोंमें बिजली, और तुम्हारी अंग-भंगीमें आँधी है। सूर्य्यके समान प्रकाशमान्, जल-प्रपातके समान प्रबल, वज्रके समान भीषण, तुम कौन हो ? तुम केवल चारणी तो नहीं हो !

सत्य०——महाराज ! यदि आप पूछते ही हैं तो मैं बतलाये देती हूँ। अब मुझे अपने आपको छिपानेकी अधिक आवश्यकता नहीं है। मैं राणा प्रतापसिंहके भाई सगरसिंहकी कन्या सत्यवती हूँ।

राणा——हैं ! तुम राजा सगरसिंहकी कन्या हो !

—

सत्य०—महाराज ! यह परिचय देते हुए मेरा सिर लज्जासे झुका जाता है । तो भी पिताके पापोंका प्रायश्चित्त इस कन्यासे जहाँतक हो सकता है, वह करती है । मेरे पिता अपने भतीजेको सिंहासनसे उतारनेके लिए चित्तौरके दुर्गमें कल्पित राणा बनकर बैठे हुए है और मैं उन्हींकी कन्या होकर उन्हीके विरुद्ध मेवाड़-वासियोंको उत्ते-जित करती फिरती हूँ । मै लोगोंको यह बतलाती फिरती हूँ कि सगरसिंह मेवाड़के कोई नहीं है, वे केवल मुगलोंके खरीदे हुए दास है । महाराज! यह तो आप जानते ही होगे कि, आज तक मेवाड़के किसी प्राणीने पिताको कर नहीं दिया ।

राणा—हॉ बहन! हमे मालूम है ।

सत्य०—महाराज! मेवाड़के लिए मै अपना सुख, सम्भोग, पिता और पुत्र आदि सब कुछ छोड़कर उसके जगलो और तराइयोंमें चारणी बनकर उसकी महिमा गाती फिरती हूँ । क्या आप मेरे उसी प्रिय मेवाडको बिल्कुल तुच्छ और अनावश्यक पदार्थकी तरह नष्ट हो जाने देंगे ? (सत्यवतीकी ऑखोमे जल भर आता है, उसका गला रुँध जाता है, वह अपनी ऑखें पोछती है ।)

राणा—शान्त होओ बहन ! तुम हमारी बहन और राजकन्या हो । तुम जिस देशके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर सकती हो उसके लिए उस देशका राजा तुम्हारा भाई भी अपने प्राण दे सकता है । गोविन्दसिंहजी ! युद्धके लिए प्रस्तुत हो जाइए और सेना तैयार कीजिए।

तीसरा दृश्य।

स्थान—मेवाड़में सैयद अब्दुल्लाका डेरा। **समय**—रात।

[अब्दुल्ला, हुसैन और हिदायत खाँ बातें कर रहे हैं।]

अब्दुल्ला—इस मुल्कमें पहाड़ बहुत ज्यादा हैं।

हिदायत—जी हाँ, जनाब।

अब्दुल्ला—आपने जिस बार शिकस्त खाई थी, उस बार राजपूतोंने किस तरफसे चढ़ाई की थी?

हिदायत—मैंने तो कभी शिकस्त नहीं खाई।

अब्दुल्ला—आपने शिकस्त नहीं खाई? दुश्मन आपको कैद कर ले गये और आप कहते हैं कि मैंने शिकस्त नहीं खाई। और शिकस्त खाना किसे कहते हैं?

हिदायत—वे मुझे कैद क्या करेंगे? मैंने खुद अपने आपको चालाकीसे पकड़वा दिया था।

अब्दुल्ला—चालाकीसे अपने आपको पकड़ा देनेके क्या मानी?

हुसैन—हाँ जनाब! इन्होंने अपने आपको चालाकीहीसे पकड़वा दिया था। जिस वक्त राजपूतोंकी फौज सिर पर आ पहुँची उस वक्त हमारे सिपाहियोंने खूब सोच समझकर म्यानसे तलवार बाहर निकाली। इसके बाद उन्होंने अपने अपने बिस्तर पर एक तरफ म्यान और दूसरी तरफ तलवार रख ली। इसके बाद सब लोग बड़े आरामसे अपनी अपनी मूँछोंपर ताव देने लगे। उस वक्त खाना भी तैयार था। बिना खाना खाये कहीं जा न सकते थे। खाना खाया और कंघीसे बाल साफ करके फिर एक बार मूँछोंपर ताव दे लिया। उस वक्त मालूम हुआ कि राजपूतोंकी फौज हमारे लश्करके दरवाजे पर आ पहुँची है। आखिर हमारे सिपाही लड़नेके लिए निकले। लेकिन पहलेसे ही तलवार

और म्यान दोनों अलग अलग रक्खी हुई थीं। जल्दीमें घबड़ाकर तलवार लेना तो गये भूल, सबने अपने अपने हाथोंमें म्यानें ले लीं।

अब्दुल्ला—क्या यह गलती सभीसे हुई ?

हिदायत—जी हाँ जनाब ! यह खुदाकी कुदरत है। इसमें किसीका दखल नहीं।

अब्दुल्ला—उन लोगोंको एक काम और करना चाहिए था।

हिदायत—वह क्या ?

अब्दुल्ला—खाना खानेके बाद मुनासिब था कि वे लोग एक तरफ तलवार और दूसरी तरफ म्यान रखकर एक नींद सो और लेते।

हिदायत—लेकिन दिक़्क़त तो इस बातकी थी कि दुश्मन सिर पर आ पहुँचे थे।

अब्दुल्ला—यह ठीक है। सोनेके लिए काफी वक्त ही नहीं था। खैर, तब आप लोगोंने क्या किया ?

हिदायत—तब हम लोग करते ही क्या ?

अब्दुल्ला—शायद यह कहा दिया होगा कि-"कैद कर लो, मगर जानसे मत मारो।"

हिदायत—नहीं, यह तो नहीं कहा था; मगर हाँ, इससे कुछ मिलता जुलता ही कहा था। क्या कहा था, कुछ ठीक याद नहीं।

अब्दुल्ला—खैर, कुछ भी हो; पर इसमे शक नहीं कि आपने ऐसी कोई खूबसूरत बात नहीं कही होगी जिसके भूल जानेसे उर्दू-साहित्यको कुछ नुकसान पहुँचा हो। गरज यह कि इसके बाद आपने अपने आपको गिरफ्तार करा दिया।

हिदायत—जी हाँ जनाब ! आपने बहुत ही ठीक समझा। लेकिन मेरे गिरफ्तार होनेसे पहले ही एक बूढ़े राजपूतने गलतीसे किसी दूसरेके धोखेमें मुझपर गोली चला दी थी।

अब्दुल्ला—मैंने सुना इसके बाद ही राणाकी लड़की आपकी खिदमतके लिए आई थी।

हिदायत—जी हाँ। आखिर तो वह एक बहादुर सिपाहीकी लड़की थी। वह बहादुरों और सिपाहियोंकी कदर खूब जानती थी और तिस पर मेरा यह चेहरा जनाब! (हुसैनकी तरफ कनखियोंसे देखता हुआ इशारा करता है।)

हुसैन—बेशक आपका चेहरा तो काबिल तारीफके है!

अब्दुल्ला—इसी लिए शायद वह—

हिदायत—अब मै आपसे क्या अर्ज करूँ जनाब!

अब्दुल्ला—शायद वह बहुत ही हसीन थी!

हिदायत—ओफ! कुछ न पूछिए।

अब्दुल्ला—उसने आपसे क्या कहा ?

हिदायत—अजी हजरत! मुझसे कुछ कहनेकी तो उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी। मालूम होता है, वह मुझे 'जान--मन' कहना चाहती थी। एक बार उसके मुहसे 'जा' तो बहुत ही साफ निकल आया था; और शायद 'न' का भी कुछ हिस्सा निकला ही चाहता था। मै 'शायद' इस लिए कहता हूँ कि झूठ बोलनेकी मेरी आदत बिल्कुल नहीं है। लेकिन मैंने कुछ इस अन्दाजसे उसकी तरफ देखा कि वह भी समझ गई कि इन पर मेरा जादू नहीं चल सकता। बस, वह कहते कहते ही रह गई--आगे कुछ कहनेकी उसकी हिम्मत ही न पडी।

अब्दुल्ला—तब उसके बाद क्या हुआ?

हुसैन—उसके बाद राणाने मारे खौफके सिपहसालार साहबको छोड़ दिया।

हिदायत—नहीं तो मै भी फिर उन्हें एक बार दिखला देता—हाँ ! ! !

अब्दुल्ला—बेशक ! हिदायत अली खाँ साहब ! आपकी बहादुरीमें तो शक नहीं ।

हिदायत—नही जनाब, मैं कोई ऐसा बहुत बड़ा बहादुर तो नहीं हूँ । मगर फिर भी आप जानते हैं, यह सिपहगिरीका फन मैंने बहुत दौलत खर्च करके सीखा है ।

अब्दुल्ला—(बातका रुख बदलकर) ओफ ! रातके वक्त ये पहाड़ कैसे काले मालूम पड़ते हैं । मालूम होता है, इस मुल्कमे सब जगह पहाड ही पहाड़ है ।

हिदायत—सिर्फ पहाड़ ही नहीं बल्कि दो चार दरिया भी हैं, जनाब !

अब्दुल्ला—कल सुबह अच्छी तरह देखा जायगा ।

[कुछ दूर पर तोपका शब्द सुन पडता है ।]

अब्दुल्ला—(घबरा कर) यह क्या !

हिदायत—हुसैन—

हुसैन—जनाब ! मालूम होता है कि इस बार राजपूतोंने हमारा इन्तजार न करके खुद ही हम लोगोंपर हमला कर दिया है ।

अब्दुल्ला—हुसैन ! फौजसे तैयार होनेके लिए कहो !

चौथा दृश्य ।

स्थान—चित्तौरके दुर्गका भीतरी भाग । **समय**—रात ।

[एक पलंग पर अरुणसिंह सोया है। दूसरा पलंग खाली पड़ा है । राजा सगरसिंह इधर उधर टहल रहे हैं ।]

सगर—यह तो मानों इन लोगोंने चित्तौरके दुर्गमें मुझे एक प्रकारसे कैद ही कर रक्खा है। यह एक एक पुराना पत्थर और यह मान्धाताके समयका एक एक पुराना पेड़ मानों एक एक भूत माळूम होता है। रातको जब हवा चलती है, तब वह और भी भयावना हो जाता है और जब अन्धड़ चलता है, तब तो उसके भूत होनेमें कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। जब अँधेरा हो जाता है तब तो वह बिल्कुल अलकतरेकी तरह काला माळूम होने लगता है। तारे तो कहीं दिखाई ही नहीं पड़ते। जो हो, यहाँ आनेसे इतना उपकार तो अवश्य हुआ कि एक बार रामायणका पाठ हो गया। बड़ी अच्छी पुस्तक है। एक लाभ यह भी हुआ कि चारणों और चारणियोंसे अपने पूर्वपुरुषोंकी बहुतसी कथायें सुन लीं। वे थे तो बड़े वीर, उनकी वीरतामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता। लेकिन आज मुझे न जाने क्यों कुछ भय लगता है। यह निर्जन दुर्ग ठहरा, तिस पर अंधड़ चलता है। डर न लगे तो और क्या हो ? पहरेदार ! पहरेदार !

[पहरेदार आता है ।]

सगर—देखो, खूब होशियार रहना। कोई आने न पावे। बाबारे ! यह क्या है ?

पहरे०—कहाँ महाराज ?

सगर—यही यही, सामने ! बापरे !

पहरे०—कुछ नहीं, अंधड़ है ।

सगर—माल्रम होता है, तुम्हारे देशमें अंधड़ खूब चलता है ।

पहरे०—जी हाँ, महाराज !

सगर—अब तो महाराज बिना नींदके बे-मौत मरे! क्यों जी, तुम्हारे देशमें अँधेरा भी बहुत होता है ?

पहरे०—जी हाँ, महाराज !

सगर—इतने अँधेरेके बिना हर्ज ही क्या था! तुम जागते रहना और बाहर जरा रोशनी कर लो, जिसमें अँधेरा कुछ कम हो जाय। इतने अँधेरेमें मुझे नींद नहीं आती। और तुम लोग हाथमें नंगी तलवार लेकर चारों तरफ घूमते रहो। ज्यों ही कोई आवे त्यों ही उस पर एक हाथ! पर देखो, कहीं भूलसे मेरी गर्दन पर ही हाथ साफ मत कर देना। जाओ।

[पहरेदार जाता है ।]

सगर—देखो, अरुण पड़ा सोता है। इसकी नींद भी कैसी है ! अगर यह एकाध बार करवट बदले, कुछ हूँ हाँ करे, तो भी मैं समझूँ कि यह जागता है। पर मुझे तो आज नींद ही नहीं आती। हमारे पुरखा इसी दुर्गमें रहते थे; इसीसे माल्रम होता है कि वे बड़े साहसी थे। पहरेदार !

[पहरेदार आता है ।]

सगर—जागते हो न ? देखो, सोना मत। और बीच बीचमें कुछ आवाज भी लगाते रहना जिसमें माल्रम हो कि हाँ, तुम जागते हो। जाओ।

[पहरेदार जाता है ।]

सगर—अरुण ! अरुण !

अरुण—हाँ, नानाजी !

सगर—अच्छा, अच्छा, सोओ । आज खूब खबरदारीसे सोना, मुझे डर लगता है ।

अरुण—डर काहेका ? आप सोइए न ! (करवट बदलता है ।)

सगर—अरे हाँ, तुम्हें क्या है । कहके छुट्टी पा गये । अरे, इधर यह क्या ? पहरेदार ! पहरेदार ! अरे सो गया ? ओ पहरेदार ! अरुण अरुण !

अरुण—क्या है नानाजी ! मालूम होता है, आज आप सोने नहीं देंगे ।

सगर—सुनते हो, यह कौन बोल रहा है ?

अरुण—कोई नहीं, अन्धड़ चल रहा है । (करवट बदलता है ।)

सगर—अरे कहाँका अन्धड़ ! अन्धड़ भी कभी बोलता है ? वह तो बोलता है ! बापरे !

अरुण—क्या है नानाजी ?

सगर—भूत !

अरुण—कहाँ है भूत ?

सगर—वह देखो । (उँगलीसे इशारा करते हैं ।)

अरुण—कहाँ ? मुझे तो कहीं कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता । मालूम होता है, आप जागते जागते स्वप्न देखते हैं ।

सगर—(कुछ दूरीपर लक्ष्य रखकर) मैं तो आना ही नहीं चाहता था । उन्होंने मुझे जबरदस्ती भेज दिया । ना भाई, मैं राणा नहीं बनता, राणा अमरसिंह ही हैं । मेरी जान मत मारो । मुझे छोड़ दो ।

अरुण—नानाजी !

सगर—अरे ये कौन हैं ? चित्तौरके राणा भीमसिंह ! जयमल ! प्रताप ! नहीं भाई, मै कल ही यहाँसे चला जाऊँगा । इस तरहसे मेरी तरफ मत घूरो । ये कौन है ? ये कौन हैं ? मारो मत । मारो मत ।

(सगरसिंह चिल्ला कर गिर पड़ते हैं । अरुणसिंह उन्हें उठकर पकड़ता है । पहरेदार भी आ जाता है ।)

अरुण—पहरेदार ! पानी लाओ । नानाजी बे-होश हो गये हैं ।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयपुरके राजप्रासादका अन्तःपुर ।

समय-दो पहर ।

[मानसी और कल्याणी बातें कर रही हैं ।]

मानसी—कल्याणी ! मैने यहाँपर एक कुष्ठाश्रम स्थापित किया है। उसमे बहुतसे कोढी आकर रहने लगे है और बहुतसे आ रहे हैं। हाय, बेचारे कैसे दुःखी है !

कल्याणी—आपका जीवन धन्य है ।

मानसी—कल्याणी ! तुम मेरी प्रशंसा करो, मेरे कार्यका अनुमोदन करो, मुझे उत्साह दिलाओ और मेरे हृदयको बलवान् बनाओ।

कल्याणी—आपके इस काममें किसीने बाधा नही दी ?

मानसी—पिताजी तो कुछ नहीं कहते, पर हाँ और सब लोग कहते है कि राजकुमारीको ये सब बाते शोभा नहीं देतीं । मानों राजकुमारीको सुखी ही न होना चाहिए ।

कल्याणी—क्या इसमें कोई बहुत बड़ा सुख मिलता है ?

मानसी—कल्याणी! अवश्य ही बहुत बड़ा सुख मिलता है। दूस-रोंको सुखी करना ही वास्तविक सुख है। अपने आपको सुखी करनेकी चेष्टा प्रायः व्यर्थ ही हुआ करती है। हिंस्र जन्तुओंकी तरह वह चेष्टा अपनी सन्तानको आप ही खा जाती है।

कल्याणी—भइया भी यही कहते थे। वे तो आपके शिष्य हैं न! वे प्रायः ही आपका नाम लिया करते हैं।

मानसी—क्या सचमुच ही वे मेरा नाम लिया करते हैं?

कल्याणी—बल्कि यों कहना चाहिए कि वे आपकी पूजा किया करते हैं। उन्होंने ही मुझसे कहा है कि—"तुम बीच बीचमें मेरी आत्माके हरिद्वार तक जाकर तीर्थ-स्नान कर आया करो।"

मानसी—पर वे स्वयँ क्यों नहीं आते? तुम उनसे यहाँ आनेके लिए कहना। उन्हें-उन्हें देखनेके लिए मेरा बहुत जी चाहता है।

[एक दासी आती है।]

दासी—राजकुमारी! एक तसबीरवाली आई है।

मानसी—क्या वह तसबीरें बेचती है?

दासी—जी हाँ।

मानसी—अच्छा, उसे यहाँ ले आओ।

[दासी जाती है।]

मानसी—तुम्हारे भइया दिन भर क्या किया करते हैं?

कल्याणी—घरमें तो मैं उन्हें बहुत ही कम देखती हूँ। जब वे घर आते हैं तब पूछने पर कहा करते हैं—"अमुक रोगीकी सेवा करने गया था, अमुक दुखियाको धैर्य्य देने गया था।" बस ऐसे ही ऐसे काम बतलाया करते हैं।

[तसबीरवाली आती है ।]

मानसी—तुम तसबीर बेचती हो ?

तसबीर०—जी हाँ ।

मानसी—जरा देखें, तुम्हारे पास कैसी कैसी तसबीरें हैं ।

(तसबीरवाली तसबीर दिखलानेके लिए गठरी खोलती है । इसी बीचमें मानसी उससे पूछती है)—तुम्हारा मकान कहाँ है ?

तसबीर०—आगरे ।

मानसी—क्या इतनी दूर तुम तसबीरें बेचनेके लिए ही आई हो ?

तसबीर०—जी हाँ, हम लोग इस कामके लिए सभी शहरोंमें घूमा करती हैं ।

मानसी—यह तसबीर किसकी है ?

तसबीर०—अकबर बादशाहकी ।

कल्याणी—अकबर बादशाहकी ? लाओ देखें तो सही । (हाथमें लेकर) ओह कैसी तीव्र दृष्टि है !

मानसी—लेकिन उसमें कुछ स्नेह और दयाका भी अंश है । यह किसकी तसबीर है ?

तसबीर०—महाराजा मानसिंहकी ।

कल्याणी—इनके चेहरेसे तो कुछ विषाद और कुछ निराशा झलकती है ।

मानसी—हाँ, कुछ चिन्तित जान पड़ते हैं । पर देखती हो, उसके साथ कुछ आत्म-मर्य्यादा भी मिली हुई है ! और यह किसकी है ?

तसबीर०—बादशाह जहाँगीरकी ।

कल्याणी—मुँहसे कैसा दम्भ प्रकट होता है !

मानसी—साथमें कुछ दृढ़-प्रतिज्ञता भी है। और यह किसकी तसवीर है ?

तसबीर०—मुगल सेनापति खानखाना हिदायत अली खाँकी। देखिए, कैसा सुन्दर चेहरा है !

[मानसी थोड़ी देर तक उसके चेहरेकी तरफ देखकर हँस पड़ती है।]

कल्याणी—आप हँसी क्यों ?

मानसी—देखो न कैसा मूर्ख जान पड़ता है ! चेहरेका रंग–ढंग और भाव तो देखो ! क्या टेढ़े तिरछे सँवारे हुए बाल हैं ! और बीच-में माँग ! औरतोंकासा स्वांग बनाये हुए ! कैसा जंगली, मूर्ख और अहंकारी जान पड़ता है ! यह कौन है ?

तसबीर—महाबतखाँ।

मानसी—सेनापति महाबतखाँ ? देखूँ। (थोड़ी देर तक देख कर) प्रकृत वीरका मुँह है। कैसा ऊँचा ललाट है ! कैसी तीव्र दृष्टि है ! इतना तेज, इतनी दृढ़ता, इतनी उदारता, और इतना आत्माभिमान, ये सब गुण प्रायः एक ही मनुष्यमें नहीं मिल सकते। क्यों कल्याणी ! इतने ध्यानसे क्या देख रही हो ?

कल्याणी—(सिर नीचा करके) कुछ नहीं।

मानसी—और ये तसबीरें किसकी हैं ?

तसबीर०—बादशाहके उमराओंकी।

मानसी—अच्छा, मैं ये अकबर, जहाँगीर, मानसिंह और महाब-तखाँकी तसबीरें लेती हूँ। इन सबका क्या दाम हुआ ?

तसबीर०—जो आप दे दें।

मानसी—(चार मोहरें देकर) ये लो।

तसबीर०—इन मोहरों पर राणा अमरसिंहकी ही मूर्ति है न ?

मानसी—हाँ ।

तसबीर०—यहाँ आपकी कोई तसबीर नहीं दिखाई पड़ती ।

मानसी—नहीं, मेरी कोई तसबीर नहीं है ।

तसबीर०—यदि आप आज्ञा दें तो मैं एक तसबीर बना सकती हूँ।

मानसी—मेरी तसबीर ? क्यों ?

तसबीर०—ऐसा करुणापूर्ण मुख मैंने आजतक कभी नहीं देखा। मैं बहुत अच्छा चित्र तो नहीं बना सकती, पर तो भी आपका चित्र बना सकूँगी ।

मानसी—नहीं, कोई आवश्यकता नहीं है ।

तसबीर०—क्यों इसमें हर्ज ही क्या है ?

मानसी—नहीं, इसमें हर्ज है । अच्छा, अब तुम जाओ ।

तसबीर०—बहुत अच्छा, अब मैं जाती हूँ ।

मानसी—जाओ ।

(तसबीरवाली चली जाती है ।)

मानसी—कल्याणी ! इतने ध्यानसे किसका चेहरा देख रही हो ?

कल्याणी—किसीका नहीं ।

(तसबीरोंको उलट पुलट कर मानसीके हाथमें देती है ।)

मानसी—इससे क्या होता है ! मैं वह तसबीर निकाल दूँगी। (चुन कर एक तसबीर कल्याणीको देती हुई) यही है न ? इसे लो । कल्याणी ! तुम इतनी लज्जा क्यों करती हो ? ये तो तुम्हारे पति हैं।

मानसी—(नीचा मुँह किये हुए) पर विधर्म्मी हैं ।

मानसी—तुम ऐसी बात कहती हो ? धर्म्म ? जिस प्रकार सब मनुष्य एक ही ईश्वरकी संतान हैं, उसी प्रकार सब धर्म्म भी एक ही धर्म्मकी सन्तान हैं । फिर भी न जाने क्यों उन सबमें इतना भ्रातृ-

विरोध है। संसारमें धर्म्मके नामपर जितना रक्तपात हुआ है, उतना कदाचित् और किसी बातके लिए नहीं हुआ।

कल्याणी—क्या उन पर प्रेम रखनेमें पाप नहीं है ?

मानसी—प्रेम करनेमें पाप ? जो जितना ही कुत्सित हो उसके साथ प्रेम करनेमें उतना ही पुण्य होता है। जो जितना ही घृणित हो वह उतना ही अधिक अनुकम्पाका पात्र है। सारे विश्वमें उसी एक अनादि सौन्दर्य्यकी किरण चमकती है। कोई ऐसा हृदय नहीं है जिसपर उस ज्योतिकी एक भी रेखा न पड़ी हो। तिसपर भी महाबत खाँ विधर्म्मी नहीं हैं, वे केवल मुसलमान हैं। वे यदि ईश्वरको 'ब्रह्म' न कह कर 'अल्लाह' कहते हैं, तो क्या इसी भाषाके भेदसे वे पापी हो गये ?

कल्याणी—आजसे आप मेरी गुरानी हुईं।

मानसी—प्रेमके राज्यमें सुन्दर और कुरूपका, अच्छे और बुरेका विचार नहीं होता; उसमें जातिभेद नहीं है। प्रेमका राज्य पार्थिव नहीं है। उसका निवास-स्थान प्रभातके उज्ज्वल आकाशमें है। प्रेम किसी प्रकारके बन्धन या रुकावटको नहीं मानता। वह एक स्वच्छ और स्वयं-विकसित सौन्दर्य्य है। मृत्युके ऊपर एक विजयी आत्माकी तरह, और ब्रह्माण्डके विवर्तन पर महाकालकी तरह वह संगीत अमर है।—कल्याणी क्या देख रही हो ?

[कल्याणी जो अब तक चुपचाप आश्चर्यसे मानसीका मुँह निहार रही थी, मानसीका अचानक प्रश्न सुनकर मानों स्वप्नसे जाग उठती है।]

कल्याणी—राजकुमारी ! आपका हृदय भी एक संगीत-- (कुछ रुक कर) कृपा कर आज मुझे आज्ञा दीजिए। यदि अनुमति हो तो मैं कल फिर आऊँगी।

मानसी—अच्छा, जाओ कल्याणी। लेकिन कल जरूर आना और अजयसे भी आनेके लिए कहना।

[कल्याणी—चली जाती है। उसके चले जानेपर मानसी गाती है।]

विहाग।

अद्भुत प्रेमको व्योहार।
प्रेम किये नर परवश होवे,
पर पै निज अधिकार॥ अ०॥
प्रेम लिये नहिं बिगरत कछु है,
दिये नाहिं संहार।
प्रेमहिसों रविशशी उगत हैं,
फूलत फूल हजार॥
पौन चलत प्रेमहिको गावत
पंछी जय-जय-कार।
नभसों सागर मिलत और नभ
सागर मिलत अपार॥
प्रेमहिसों पाथर हू पिघलत
बहत नदीकी धार।
सरग लोक पृथिवी पै उतरत,
पृथी चढ़त सुरद्वार॥
प्रेमगीत गूँजत नभ, छाई
प्रेमकिरन संसार।
प्रेमी बनहु वेग अब प्यारे
प्रेम जगतको सार॥

[रानी आती है।]

रानी—मानसी !

मानसी—क्यों माँ !

रानी—तुम्हारे पिताजी तुम्हें बुलाते हैं।

मानसी—क्यों? क्या काम है?

रानी—तुम्हारे ब्याहके लिए दिन ठीक करना है, इसीसे तुमसे कुछ पूछना चाहते हैं। मेरी बात तो उन्होंने मानी ही नहीं।

मानसी—मेरा ब्याह?

रानी—हाँ, जोधपुरके राजकुमार यशवन्तसिंहके साथ तुम्हारे ब्याह-की बातचीत पक्की हुई है। ब्याहका दिन ठीक करनेके लिए जोधपुर-महाराजके पास आदमी भेजा जा रहा है।

[मानसी रो पड़ती है।]

रानी—क्यों? यह क्या? रोती क्यों हो?

मानसी—नहीं, रोती नहीं हूँ। मैं ब्याह नहीं करूँगी।

रानी—ब्याह नहीं करोगी? यह क्यों?

मानसी—मैं परिणयके बन्धनमें अपने जीवनको बाँध कर नहीं रक्खूँगी। मेरे प्रेमकी परिधि उससे कहीं बड़ी है।

रानी—ऐसा कहीं होता है बेटी! कुमारी रहकर क्या कहीं जीवन बिताया जा सकता है?

मानसी—क्यों नहीं बिताया जा सकता? बालविधवायें ब्रह्मचर्य्य पालन कर सकती हैं, और बालिका कुमारी ब्रह्मचर्य्यका पालन नहीं कर सकती? मैं ब्रह्मचारिणी रहूँगी। मैं पिताजीसे जा कर कहे आती हूँ।

[मानसी चली जाती है।]

रानी—यह क्या? लड़की कहीं पागल तो नहीं हो गई! पागल न हो तो क्या हो? वे तो कुछ कहते ही नहीं हैं। मुझे पहले ही डर था—लो, वे स्वयं ही आ रहे हैं। आज मैं उन्हें अच्छी तरह दो चार बातें सुनाऊँगी।

[राणा आते हैं ।]

राणा—मानसी कहाँ है ?

रानी—वह आपके पास नहीं गई ? जान पड़ता है वह कुछ पागल हो गई है ।

राणा—पागल हो गई है ?

रानी—और क्या । कहती है मैं ब्याह नहीं करूँगी । ब्रह्मचारिणी बनूँगी ।

राणा—ठीक है, समझ लिया ।

रानी—मै कहती थी कि लड़की पर कुछ डाँट-डपट रखिए, पर आपने नहीं सुना । उसीका यह सब फल है ।

राणा—जान पड़ता है, तुम कुछ भी समझती बूझती नहीं ।

रानी—मै खूब समझती हूँ । वह पागल हो गई है ।

राणा—यदि ऐसा पागलपन तुम्हे होता, तो मैं तुम्हें सोनेके सिंहासन पर बैठा कर पूजता ।

रानी—लो और सुनो ! बाप-बेटी दोनोंकी एक दशा !

राणा—रानी ! हम भी उसे बहुत अच्छी तरह पहचानते हों, सो भी नहीं है; तो भी इतना समझते हैं कि वह कोई स्वर्गीय पदार्थ है ।

रानी—वह यदि—

राणा—नही, उसके विषयमे तुम कुछ भी मत कहो । देखती रहो, चुपचाप देखती ही रहो ।

[राणा जाते हैं ।]

रानी—देख लिया । मानसीका यह पागलपन पैतृक है । अब मेरा भविष्य बहुत अच्छा नहीं जान पड़ता ।

[रानी जाती है ।]

छठा दृश्य।

स्थान—गोविन्दसिंहका घर। **समय**—दोपहर।

[दीवार पर एक तसबीर टँगी है। थोडी दूर पर
हाथमें फूलोंका गुच्छा लिये हुए कल्याणी
उस तसबीरकी ओर देख रही है।]

कल्याणी—प्यारे! मेरे प्रियतम! मेरे यौवन निकुंजके पिक! मेरी सुषुप्तिके सुख-जागरण! मेरी जागृतिके सोनेके स्वप्न! तुमने मेरे जगत्को नये रगमे रँग डाला है, मेरे सामान्य जीवनको रहस्य-मय बना दिया है। तुम प्रभातके सूर्य्य हो—तुमने मेरे हृदयकी अँधेरी कन्दरामे प्रवेश किया है। तुम मेरे हृदयके राजा हो,—तुमने मेरे हृदयके सिंहासन पर अधिकार किया है। तुम आशा हो,--तुमने मेरे जीवनकी निराशाको सिर उठा कर देखना सिखाया है। तुम सदा मधुर सदा नवीन हो। तुम मेरे स्वामी हो, मेरे देवता हो, मेरे सारे जीवनकी तपस्या हो। (अपने हाथके फूल उस चित्र पर चढाती है। इतनेहीमे गोविन्दसिंह वहाँ पहुँचकर उसका वह पूजन देखते है।)

गोविन्द०—(गम्भीर स्वरसे) कल्याणी!

कल्याणी—(फिर कर) पिताजी!

गोविन्द०—यह चित्र किसका है?

कल्याणी—(सिर झुकाकर) मेरे पतिका।

गोविन्द०—तुम्हारा पति कौन? महाबतखाँ?

कल्याणी—हाँ।

गोविन्द०—यह चित्र यहाँ कैसे आया?

कल्याणी—पूजा करनेके लिए मैने इसे आज ही यहाँ लाकर टाँगा है।

गोविन्द०—पूजा करनेके लिए ?

कल्याणी—हाँ, पिताजी, पूजा करनेके लिए। आप क्रोध न कीजिए। क्या यह कोई अपराधकी बात है? (गोविन्दसिंहके पैरों पड़ जाती है।)

गोविन्द०—महाबतखाँ तुम्हारा कौन है ?

कल्याणी—(उठकर) वे मेरे पति हैं।

गोविन्द०—लेकिन मै तो तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि तुम्हारे कोई पति नहीं है ?

कल्याणी—पहले तो मैं भी यही समझती थी, पर अब मुझे मालूम हुआ है कि नहीं, मेरे पति है।

गोविन्द०—पति है ? विधर्म्मी महाबतखाँ तुम्हारा पति है ?

कल्याणी—पिताजी ! मैं न तो धर्म्म जानती हूँ और न आचार जानती हूँ। मैं केवल इतना जानती हूँ कि इन्हींके साथ मेरा विवाह हुआ था। उसी विवाहबन्धनसे, ईश्वरको साक्षी देकर, हम दोनों उस दिन एक हुए थे। भला उस बन्धनको कौन तोड़ सकता है ?

गोविन्द०—क्या महाबतखाँने मुसलमान होकर वह बन्धन स्वयं नहीं तोड़ डाला ?

कल्याणी—नहीं, क्योंकि मुसलमान होने पर भी उन्होने मुझे ग्रहण करना चाहा था।

गोविन्द०—तुम्हें ग्रहण करना चाहा था? यवन होनेके उपरान्त गोविन्दसिंहकी कन्याको ग्रहण करना या न करना महाबताखाँकी इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर है ? कल्याणी ! जिस दिन महाबतखाँ हिन्दूधर्म्म छोड़ कर मुसलमान हुए थे, उसी दिन उन्होंने तुम्हारा परित्याग कर दिया था।

कल्याणी—नहीं, उन्होंने मेरा परित्याग नहीं किया था।

गोविन्द०—क्या कहती हो? उन्होंने तुम्हारा परित्याग नहीं किया? क्या अभी तक तुम्हारे अपमानकी मात्रा पूरी नहीं हुई?—अच्छा तो सुनो। क्या तुमने महाबतखाँको कोई पत्र लिखा था?

कल्याणी—हाँ लिखा था।

[अजयसिंह आते हैं।)

गोविन्द०—हा अदृष्ट! (माथा ठोककर) महाबतने वह पत्र लौटा दिया है और उसपर लिख दिया है--' कल्याणी! मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता।' क्या तुमसे इतना अपमान कराये बिना नहीं रहा जाता था? लो, यह वह पत्र है।

(गोविन्दसिंह हाथसे पत्र फेंक देते हैं। कल्याणी उस पत्रको उठा कर बड़ी उत्सुकतासे देखने लगती है।)

गोविन्द०—क्यों अजय, वह खबर ठीक है न?

अजय०—हाँ, पिताजी, बिल्कुल ठीक है। मुगल फिर मेवाड़ पर आक्रमण करने आये हैं।

गोविन्द०—इस बार सेनापति कौन है?

अजय०—शाहजादा परवेज।

गोविन्द०—सेना कितनी है?

अजय०—लगभग एक लाख।

गोविन्द०—अबकी बार सब नष्ट हो जायगा, कुछ भी न बचेगा। मेवाड़में जो कुछ थोड़े बहुत प्राण बचे थे, वे भी निकल जायँगे। क्यों कल्याणी, तुम सिर क्यों नीचा किये हो?

कल्याणी—क्या कहूँ पिताजी।

गोविन्द०—क्या अब भी महाबतखाँ तुम्हारा पति है?

कल्याणी—हाँ, अवश्य। जो पति अपनी स्त्रीका आदर करता है, उसकी तो सभी स्त्रियाँ पूजा करती हैं। वास्तविक साध्वी वही है जो अपने पतिके उन्हीं पैरोंकी पूजा करती है जिनसे वह उसे मारता है। जिसकी पतिभक्तिका वियोग होने पर क्षय नहीं होता, अवज्ञा या अपमान होनेपर संकोच नहीं होता, पतिके निष्ठुरता दिखाने पर ह्रास नहीं होता, निराशा होनेपर भी जिसमें क्षोभ नहीं होता; जिसकी पति-भक्ति अन्धकारमें चन्द्रमाके समान शान्त, आँधीमें पर्वतके समान दृढ़ और घूमनेमें ध्रुवतारेके समान स्थिर हो; जिसकी पतिभक्ति सब अवसरों पर, सब अवस्थाओंमें, विश्वासके समान स्वच्छ, करुणाके समान अयाचित और मातृस्नेहके समान निरपेक्ष हो, वही सच्ची साध्वी है। वे मेरे स्वामी हैं, पति हैं, देवता हैं; चाहे वे मुझे अपनी चरण-सेवामें रक्खें चाहे न रक्खें, मेरे लिए दोनों बातें बराबर हैं।

गोविन्द०—दोनों बराबर हैं?—कल्याणी! तुम मेरी कन्या हो न?

कल्याणी—हाँ पिताजी! मैं आपकी कन्या हूँ। मैं आपका गौरव कभी नष्ट नहीं करूँगी। पिताजी! आज मैं एक बड़ी भारी गरिमाका अनुभव कर रही हूँ। आज मुझे यह दिखानेका बड़ा भारी सुयोग मिला है कि मैं उनकी साध्वी स्त्री हूँ। आपने जिस प्रकार अपने देशके लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है उसी प्रकार आज मैं भी उस महा आनन्दमय उत्सर्गके पथपर चल रही हूँ।—अब मुझे कौन रोक सकता है? (आवेशके कारण कल्याणीका स्वर काँपने लगता है।)

गोविन्द०—उत्सर्ग! तुम अपनी इस कुलटा-प्रवृत्तिको उत्सर्ग कहती हो!

अजय०—पिताजी! आप जो कुछ कहें वह सोच समझ कर कहें। आप नहीं जानते कि आप क्रोधमें आकर क्या कह रहे हैं।

और नहीं तो मैं नहीं समझता कि जो भाव अति उच्च, अति सुन्दर और अति पवित्र है उसे आप इतना कुत्सित क्यो समझ रहे हैं।

कल्याणी—(गर्वसे) भइया, तुम मेरे सच्चे भाई हो!

गोविन्द०—अजय! मै एक सौ बार कह चुका हूँ कि कल्याणीके पति नहीं है!—वह विधवा हो चुकी है!

कल्याणी—और मै भी एक सौ बार यह कहनेके लिए तैयार हूँ कि जीवनमे, मरणमें, सदा वे ही मेरे पति है।

गोविन्द—महाबतखाँ और तुम्हारा पति?—ऐसा घृणित, नीच, अधमाधम—

कल्याणी—पिताजी! ध्यान रखिए, आपके लिए घृणित होनेपर भी वे मेरे लिए पूज्य है।

गोविन्द—पूज्य? वह जाति-द्रोही विधर्म्मी महाबतखाँ गोविन्द-सिंहकी कन्याका पूज्य है?—हा दुर्भाग्य!

कल्याणी—(स्थिर स्वरसे) पिताजी!' मै पिताको नहीं जानती, जातिको नहीं जानती, धर्म्मको नहीं जानती। मेरा धर्म पति है। शास्त्रकारोने इससे बढ़ कर स्त्रीके लिए और कोई धर्म्म नहीं लिखा। पिताजी! स्त्री जब एक बार कूद पड़ती है, तब फिर वहाँ चाहे अमृतका समुद्र हो, और चाहे विषका हो, वही उसका जीवन होता है और वहीं उसका मरण होता है, वहीं उसका इह-काल है और वहीं उसका पर-काल है। वे चाहे हिन्दू हों और चाहे मुसलमान, चाहे आस्तिक हो चाहे नास्तिक, अब तो वे और मै दोनो, एक ही पथके पथिक है। इसके लिए यदि मुझे उनके साथ नरकमें भी जाना पड़े तो मैं वहाँ जानेके लिए तैयार हूँ।

गोविन्द०—अच्छी बात है, तब तुम जासकती हो। जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ। आजसे मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ।

अजय०—यह क्या! पिताजी, आप क्या कर रहे हैं! कल्याणी आपकी कन्या—

गोविन्द०—नहीं, वह मेरी कन्या नहीं है। जाओ, कल्याणी! तुम अपने पतिके पास जाओ।

कल्याणी—पिताजी! आपकी आज्ञा सिर-आँखो पर है। अच्छा तो अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिए।

[कल्याणी गोविन्दसिंहको प्रणाम करती है।]

अजय०—पिताजी! कुछ सोच समझ लीजिए। इस प्रकार अन्याय न कीजिए। कल्याणी स्त्री है। यदि वह भूल करे, अपराध करे, तो भी उसे क्षमा करना चाहिए।

गोविन्द०—बेटा! कल्याणी नरकमें जाना चाहती है। जाय! मैं उसे रोकना नहीं चाहता।

अजय०—पिताजी! उसके लिए वह नरक नहीं है। जहाँ प्रेमका पुण्यप्रकाश है, वहीं सच्चा स्वर्ग है। जल्दीमें इस रत्नको खो न दीजिए। आप नहीं समझते कि आप क्या कर रहे हैं।

गोविन्द०—अजय, मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। कल्याणी! जो भीतरसे देशका शत्रु हो, मेरे घरमें उसके लिए स्थान नहीं है। यदि तुम्हारा धर्म्म 'पति' है तो हमारा धर्म्म 'देश' है। जाओ।

[गोविन्दसिंह पीठ फेर लेते हैं।]

कल्याणी—जो आज्ञा पिताजी!

[कल्याणी जानेके लिए तैयार होती है।]

अजय०—ठहरो कल्याणी! पिताजी! तब आप मुझे भी जानेकी आज्ञा दीजिए।

गोविन्द०—(सामने मुँह करके) यह क्यों अजय?

अजय०—मैं इस अबला बालिकाको अकेले नहीं जाने दूँगा। मैं भी इसके साथ जाऊँगा।

गोविन्द०—लेकिन अजय, तुम्हें तो मैंने घरसे बाहर जानेके लिए नहीं कहा।

अजय०—पिताजी! मैंने भी उसकी अपेक्षा नहीं रक्खी। कल्याणी स्त्री है। आप उसे उसके पुण्यके कारण घरसे निकाल देते हैं और हिंस्र मनुष्योंसे भरे हुए संसारमें अकेले छोड़ देते हैं। यदि इस समय उसका पति यहाँ होता तो वह उसकी रक्षा करता। इस समय पति यहाँ नहीं है, उसका भाई है। वही उसकी रक्षा करेगा। आओ कल्याणी! आज हम भाई-बहन दोनों अपनी नाव इस विक्षुब्ध संसार-सागरमें छोड़ते हैं। देखो, किनारे लगते हैं या नहीं! पिताजी प्रणाम!

[अजयसिंह प्रणाम करते हैं।]

[अजयसिंह अपने साथ कल्याणीको ले कर वहाँसे चले जाते हैं। गोविन्दसिंह पत्थरकी मूरतकी तरह जहाँके तहाँ खड़े रह जाते हैं।]

सातवाँ दृश्य।

स्थान—चित्तौरके पासका एक जंगल। **समय**—संध्या।

[सगरसिंह और अरुणसिंह एक वृक्षके नीचे खड़े हुए हैं। दूर एक पहाड़की दूसरी ओर सूर्य्य अस्त हो रहा है।]

सगर०—इस राज्यमें रहनेकी मेरी तो जरा भी इच्छा नहीं है। चित्तौरका किला तो एक तरहका जेलखाना है;—पुराना, डरावना और

अँधेरा, और तिसपर चारों तरफ पहाड़ और पेड़; आदमीका तो कहीं नाम भी नहीं है। इतने बड़े और पुराने पेड़ भी मैंने कहीं नहीं देखे। अरुण ! मैं तो अब आगरे लौट जाऊँगा !

अरुण०—नानाजी ! मुझे तो यह जगह बहुत अच्छी लगती है। यहाँकि प्रत्येक पहाड़के साथ हमारे पूर्व-पुरुषोंकी स्मृति सम्बद्ध है। क्या प्राचीन कालके गौरवकी कथा आपको अच्छी नहीं लगती ?

सगर०—लो, फिर वही प्राचीन गौरवका रोना ले आया ! अरे जो बीत गया सो बीत गया; उसके लिए वृथा माथा-पच्ची न किया कर।

अरुण०—लेकिन नानाजी, मुझे तो वर्तमानकी अपेक्षा अतीत ही बहुत अच्छा माळूम होता है। वर्तमान बहुत ही तीव्र और स्पष्ट होता है; पर अतीत प्रायः ढँका हुआ और अस्पष्ट होता है। अतीत मानों नीलिमाके समान, उपन्यासके समान, स्वप्नके समान होता है।

सगर०—लो, मैं जिस बातसे डरता था वही हुई। तुम ज्यों ज्यों बड़े होते जाते हो त्यों त्यों अपनी माँके ही ढँग सीखते जाते हो। वह भी ऐसी ही बातें किया करती थी। बस इसी तरहकी बातें करते करते ही वह घरसे बाहर निकल गई और फिर किसीको पता भी न लगा कि कहाँ चली गई।

अरुण०—मेरी माँ इसी तरहकी बातें किया करती थी ?

सगर०....हाँ। और ये ही सब बातें उसके लिए काल हुईं। वह 'मेवाड़,' 'मेवाड़' करती हुई ही पागल हो गई, और घरसे निकल गई।

अरुण०—मैं उसे ढूँढ़ कर लाऊँगा।

सगर०—इस जंगलमेंसे ? अरे बेटा, इस जंगलमें अगर सूरज डूबा होता तो उसका भी ढूँढ़ निकालना महा कठिन होता। तुम्हारी माँ तो माँ ही है।

अरुण०—नहीं नानाजी! अब मैं आगरे नहीं जाऊँगा। आपको जाना हो तो आप जाइए। मुझे यह जगह बहुत अच्छी लगती है और फिर जब मेरी माँ इस देशमें है, तब तो यही मेरा घर है। आगरेमें तो मैं इतने दिन मानों निर्वासित था।

सगर०—मुझे पहले ही इस बातका डर था। माद्धम होता है तुमने आगरेमें बादशाहका सफेद पत्थरवाला महल नहीं देखा है। चलो, अबकी तुम्हें वह दिखलावेंगे।

अरुण०—नहीं, मैं कुछ नहीं देखना चाहता। मुझे तो यह निर्जन वन ही उससे कहीं अच्छा जान पड़ता है।

सगर०—आगरेमें ७८ मसजिदें हैं। सब एकसे एक बढ़िया, नई और झकाझक!

अरुण०—नानाजी! मुझे तो सैकड़ों ऊँची ऊँची सोनेकी मसजिदोंसे बढ़कर अपने देशका एक टूटा हुआ मन्दिर ही बहुत अच्छा माद्धम होता है। मुगलोंके पैरोंके पास बैठकर राजभोग खानेकी अपेक्षा अपनी दीना माताकी गोदमें बैठकर साग--सत्तू खाना कहीं अच्छा है। नानाजी! क्या आप यही भीख माँगकर खानेके लिए अपना देश छोड़कर, अपना भाई छोड़कर और सैकड़ों पुण्य-कथाओंवाला अपना घर छोड़कर दूसरोंके दरवाजे गये थे? वे यदि नित्य मुट्ठी भर सोना भी आपको भीखमें दें, तो भी उसके साथ उनके पैरोंकी धूल मिली रहेगी। वे जब आपकी ओर देखकर हँसते हैं, तब मैं देखता हूँ, उस हँसीके नीचे घृणा भी झलकती रहती है। नानाजी! मैं तो परायेके दिये हुए सोनेके भण्डारसे अपने भाईके खाली हँसनेको भी कहीं अधिक उत्तम समझता हूँ।

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—जीते रहो बेटा!

सगर०—कौन ? सत्यवती ? क्या मैं स्वप्न देखता हूँ ? नहीं, यह तो सत्यवती ही है ! सत्यवती ! तुम यहाँ कैसे आ गई बेटी!

सत्य०—बेटा, जिस दिन मैं स्वदेशके लिए संन्यास लेकर घरसे बाहर निकलने लगी थी उस दिन तुम्हारे छोटे छोटे दोनों हाथोंका बन्धन छुड़ाकर चलना ही मेरे लिए सबसे अधिक कठिन हुआ था। जब मैं इन पहाड़ोंके किनारे किनारे मेवाड़की महिमा गाती फिरती थी, तब तुम्हारी हँसीको भूलना ही मुझे सबसे अधिक कठिन जान पड़ता था। जब मैंने सुना कि तुम यहाँ आये हो, तब मुझसे न रहा गया। मैं तुरन्त ही दौड़ी हुई तुम्हें देखनेके लिए यहाँ चली आई। इतनी देर तक मैं ओटसे तुम्हारी अमृतभरी बातें सुनती थी। मैं सोचती थी कि क्या ऐसी स्वर्गीय बातें भी इसी पृथ्वीपर हो सकती हैं! अन्तमें मुझसे नहीं रहा गया!—मेरे लाल! मेरे सर्वस्व!

[सत्यवती हाथ बढ़ाती है।]

सगर०—बेटी सत्यवती! मेरी ओर तो तूने एक बार भी नहीं देखा। मैंने क्या कोई अपराध किया है ?

सत्य०—अपराध? क्या आप अपना अपराध नहीं जानते? नहीं, कदाचित् उसके समझनेकी शक्ति ही आपमें नहीं है। आप अपनी इस दीना, हीना और दुखिया जननी जन्म-भूमिको छोड़ कर मुगलोंके प्रसाद-भोगी बने हैं। आप उन्हीं मुगलोंके दास हुए हैं जिन्होंने हमारे मन्दिरों और तीर्थोंको नष्ट और अपवित्र किया है, जिन्होंने यहाँकी स्त्रीजातिको लाञ्छित किया है और जिन्होंने यहाँके पुरुषोंको मनुष्यत्व-हीन बना दिया है। जो मुगल दर्पसे फूलकर—गर्वोन्मत्त होकर राजपूतानेके बाकी बचे हुए स्वाधीन राज्य मेवाड़ पर बार बार आक्रमण

कर रहे हैं, जो उसकी हरियालीपरसे उसीकी सन्तानके रक्तकी नदियाँ बहा रहे हैं, आप उन्हीं मुगलोंकी शरणमें पड़े हैं। आप उन्हीं मुगलोंकी कृपासे अपने भतीजे, राणा प्रतापसिंहके पुत्रको सिंहासनसे उतारनेके लिए तैयार हुए हैं। और तिस पर भी आप पूछते हैं कि मेरा क्या अपराध है? जाइए, पिताजी! आपने अपने लिए अलग रास्ता पसन्द किया है और हम लोगोंका रास्ता अलग है। आओ बेटा! इस अन्धकार, इस दुर्दिनमें तुम्हीं मेरे सह-यात्री हो। आज मेरे हृदयमें दूना बल आ गया है। आओ बेटा, चलें।—

[अरुणको साथ लेकर जाना चाहती है।]

सगर०—नहीं नहीं, सत्यवती! ठहरो। अरुण! तुम भी मत जाओ। बल्कि नहीं, मैं भी तुम्हीं लोगोंके साथ चलूँगा। आज मेरी आँखें खुली हैं! आज मैंने अपनी मातृभूमिको पहचाना है। आजसे मैंने पराई कृपाकी आशा अपने हृदयसे निकाल कर फेंक दी। आजसे मैंने अपने देशके साथ दरिद्रता, दुःख और उपवास ग्रहण किया। आओ बेटी, तुम्हें अपने गलेसे लगाऊँ।

सत्य०—यह क्या पिताजी! क्या आज मेरा इतना बड़ा भाग्य होगा कि मैं एक ही समयमें, एक ही साथ, अपने पिता और पुत्रको प्राप्त करूँगी! क्या आप जो कुछ कह रहे हैं वह सत्य है? बिल्कुल सत्य है?

सगर०—हाँ सत्यवती! यह सत्य है, बिलकुल सत्य है। पहले ये सब बातें मेरी समझमें नहीं आती थीं। तुम मुझे क्षमा करो। क्षमा करो।

सत्य०—पिताजी! पिताजी!

[सत्यवती घुटने टेक कर अपने पिताके सामने बैठ जाती है और उनके पैरों पर अपना सिर रख देती है।]

तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान-उदयपुरकी राजसभा। **समय**-प्रभात।

[सामन्त लोग खड़े हुए बातें कर रहे हैं।]

जयसिंह—यह कामनेरका युद्ध इतिहासके पृष्ठोंमें सोनेसे लिख रखनेके योग्य है।

गोकुलसिंह—परवेजकी रसद आनेका मार्ग बंद कर देना बड़ी बुद्धिमत्ताका काम हुआ।

भूपति—माल्म होता है, वे लोग यह जंगली रास्ता नहीं जानते थे।

गोकुल०—लेकिन भागनेका रास्ता खूब जानते थे।

जय०—आज मेवाड़का गौरवमय प्रभात है। देखो, कैसे नवीन प्रकाशसे मेवाड़के सारे पहाड़ चमक रहे हैं।

भूपति—यह सुन्दर पवन सारे भारतमें इस विजय-समाचारको फैला दे।

[राणा अमरसिंह आते हैं।]

सब लोग—जय राणा अमरसिंहकी जय।

[राणा सिंहासन पर बैठते हैं ।]

राजकवि किशोरदास आते हैं और राणाकी विजयका गीत गाते हैं।

आसावरी ।

वीर महीपति नरपति जय जय ।
रविकुल-रवि तुम भारत-रक्षक,
काँपत शत्रु सदा तुम्हरे भय ।
प्रगटै गगन प्रताप प्रबल तव,
होहि सदा प्रभु रिपु-दल-बल छय ।

राणा—किशोरदास, तुम अपने गीतमें एकचरण और जोड़ दो ।

किशो०—जो आज्ञा महाराज!

राणा०—'तुम्हरे कारन जैहै सर्वस, करि हौ तुम निज-कुल-कीरति क्षय।'

किशोर०—यह क्यों महाराज?

राणा०—(कुछ हँसकर) क्यों? पूछते क्यों हो—देख लो ।

[सत्यवती आती है ।]

सत्य०—मेवाड़के राणाकी जय हो ।

राणा०—कौन? बहन सत्यवती?

[राणा सिंहासनसे उतर कर उसकी अभ्यर्थना करते हैं ।]

राणा—आओ बहन!

सत्य०—महाराज! मैं इतनी देरतक बाहर खड़ी खड़ी मेवाड़का विजय-गीत सुनती थी । सुनते सुनते आँखोंमें आनन्दाश्रु भर आये । मैं मन्त्र-मुग्धकी तरह चुपचाप खड़ी सुनने लगी । लंका जीतनेके उपरान्त महाराणाके पूर्वपुरुष भगवान रामचन्द्रके अयोध्या-प्रवेशकी बात मुझे याद आ गई । इसके बाद गीत बंद हो गया। मालूम हुआ कि

मानों कोई देवी आकर अपनी आभामें आवृत करके उसे अपने स्वर्ग-राज्यमें उड़ा ले गई। उस समय मैं मानों स्वप्नसे जाग उठी।

राणा—सत्यवती! गीत इसी प्रकार थम जाता है। सभी गीत एक प्रकारके आनन्द-कोलाहलके समान आरम्भ होते हैं और अंतमें एक गहरी साँसमें मिल जाते हैं।

सत्य०—यह क्यों महाराज! इस आनन्दके दिन आप इतने निरानन्द और विरस क्यों हैं? महाराज! आप अपने हृदयसे इस निराशाको निकाल कर दूर कर दीजिए। आज मेवाड़का बहुत ही गौरवमय दिन है।

राणा—गौरवका दिन तो कहा ही जाता है। सत्यवती, एक नई बात सुनोगी? कामनेरका युद्ध हमने नहीं जीता है।

सत्य०—तब और किसने जीता है? क्या मुगलोंने जीता है?

राणा—नहीं, राजपूतोंने जीता है। लेकिन हम लोगोंने—जो लोग यहाँ विजयोत्सव मना रहे हैं, उन लोगोंने—यह युद्ध नहीं जीता है। जिन लोगोंने इस युद्धमें विजय प्राप्त की है वे सब युद्ध-क्षेत्रमें पड़े हैं। सत्यवती! वास्तवमें वे लोग युद्धमें विजय नहीं प्राप्त करते जो युद्ध-क्षेत्रसे निशान उड़ाते हुए, डंका बजाते हुए और जयध्वनि करते हुए लौटते हैं। वास्तवमें विजय वे ही प्राप्त करते हैं जो उस युद्धमें मारे जाते हैं।

सत्यवती—महाराज, यह बिलकुल सच है। ईश्वर करे, उन लोगोंकी कीर्ति अक्षय हो। महाराज! मैं एक शुभसंवाद सुनाना चाहती हूँ।

राणा—सत्यवती! वह कौनसा संवाद है?

सत्य०—महाराज! मेरे पिता राणा सगरसिंहने आपके लिए चित्तौर दुर्ग छोड़ दिया है। आप बे-रोकटोक जाकर उस दुर्ग पर अधिकार कर लें।

राणा—चित्तौर-दुर्ग हमारे लिए छोड़ दिया है! सत्यवती! यह तुम क्या कह रही हो! क्या यह बात ठीक है? ऐसा कहीं हो सकता है!

सत्य०—हाँ महाराज! यह बात बहुत ही ठीक है।

राणा—उन्होंने अचानक हमारे लिए वह दुर्ग क्यों छोड़ दिया? क्या बादशाहने उन्हें ऐसा करनेकी आज्ञा दी थी?

सत्य०—नहीं महाराज, उन्होंने बादशाहकी आज्ञासे ऐसा नहीं किया। बादशाहने उन्हें चित्तौरका किला दे दिया था। उन्हें इस बातका अधिकार था कि वे जिसे चाहें उसे वह किला दे दें। अतः वे प्रसन्नतापूर्वक वह किला आपको देकर आगरे चले गये हैं।

राणा—सामन्तो! जयध्वनि करो। स्वर्गीय पिताजीके जीवनका स्वप्न आज सफल हुआ,--उनके पुत्रके बाहुबलसे नहीं बल्कि उनके भाईके दानसे। चलो, दुर्गपर अधिकार करो, नई सेना सुसज्जित करो; आगे बढ़ो, आक्रमण करो, और अन्तपर्यन्त युद्ध करो।

सत्य०—जय! राणा अमरसिंहकी जय!

सामन्तगण....जय! राणा अमरसिंहकी जय!

दूसरा दृश्य।

स्थान—गाँवके बाहर एक पगडंडीके पास छोटीसी टूटी फूटी कुटी।

समय—सन्ध्या।

[कल्याणीके साथ अजयसिंह उसी पगडंडीसे चले आ रहे हैं।]

कल्याणी—भइया, अब तो नहीं चला जाता।

अजय—आज हम लोग इसी गाँवमें ठहरेंगे। गाँवके बाहर ही यह कुटी है। जान पड़ता है कोई दूकान है। दरवाजा नहीं है, भीतर अन्धकार है।

कल्याणी—जरा आवाज दे देखो।

अजय—कोई है? भीतर कोई है? यहाँ तो कोई बोलता ही नहीं। माळूम होता है यहाँ कोई रहता ही नहीं है।

कल्याणी—आज हम लोग यहीं रहें। अब तो चला नहीं जाता।

अजय०—अच्छी बात है। तुम यहीं थोड़ी देर तक ठहरो। मैं जाकर गाँवसे दीआ ले आता हूँ।

कल्याणी—जाओ, मै तो अब एक पग भी नहीं चल सकती हूँ। भइया! मुझे बड़ी भूख लगी है।

अजय—मैं कुछ खानेके लिए भी ले आऊँगा। तुम यहीं ठहर जाओ।

कल्याणी—जल्दी आना भइया! मैं अकेली हूँ, डर लगता है।

अजय—मैं बहुत जल्दी आऊँगा। और यहाँ डर ही काहेका है? यहाँ कोई है भी तो नहीं। (जाता है।)

कल्याणी—आजतक मैं कभी पैदल चली नहीं, इसीसे चलते चलते दोनों पैर लहू-लुहान हो गये हैं। पर इसीमें मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। अपनी इच्छासे इस दुःख और दरिद्रताको स्वीकार करनेमें ही मुझे असीम अभिमान हो रहा है। नदी जिस प्रकार बिना किसी तरहकी रुकावटके लहरें मारती हुई समुद्रकी ओर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार मैं भी आनन्दपूर्वक अपने सर्वस्व–अपने स्वामी–के पास जा रही हूँ। पर मुझे यह भी नहीं माळूम कि वे दासीरूपसे भी मुझे अपने चरणोंमें स्थान देंगे या नहीं।–कौन?

[फकीरके भेसमें सगरसिंहका प्रवेश ।]

सगर०—बेटी, मैं एक राजपूत हूँ। तुम किसी प्रकारका भय मत करो। मैं देखता हूँ तुम भी राजपूत स्त्री हो। तुम यहाँ अकेली क्यों हो?

कल्याणी—मेरे भइया एक दीआ और कुछ खानेको लानेके लिए इसी गाँवमें गये हैं।

सगर—अच्छी बात है। जब तक वे लौट कर न आ जायँगे तब तक मैं यहीं रहूँगा। इस स्थान पर मुसलमान सैनिकोंका उपद्रव बढ़ रहा है। उनमेंके चार पाँच आदमियोंको मैंने अभी यहीं पास ही देखा था। जब तक तुम्हारे भइया लौट कर न आवेंगे तब तक मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

कल्याणी—आप यहीं ठहर कर मेरी रक्षा कीजिए!—मुझे डर लगता है।

नैपथ्यमें—इसी टूटे घरमें?

नैपथ्यमें—हाँ, यहीं। (कोई किवाड़ खटखटाता है।)

कल्याणी—कौन?—भइया! भइया!

[तीन डाकू भीतर घुस आते हैं।]

पहला डाकू—यही है! यही है!

दूसरा डाकू—पकड़ो!

(पहला डाकू कल्याणीको पकड़ना चाहता है कल्याणी दूर हटकर चिल्लाती है)—"मुझे बचाओ, बचाओ।"

सगर०—(आगे बढ़कर) खबरदार!

पहला डाकू—यह कौन?

दूसरा डाकू—जो हो, पहले इसीको मारो।

[सगरसिंह डाकुओंसे लड़ने लगते हैं और लड़ते लड़ते गिर पड़ते हैं।]

कल्याणी—भइया ! भइया !

[अजयसिंह आ पहुँचते हैं ।]

अजय०—कल्याणी ! डरो मत । मैं आ गया । (अजयसिंह तलवार निकालकर डाकुओं पर वार करते हैं और उन्हें जमीन पर गिरा देते हैं ।)

अजय०—इन सबको तो मैंने खतम किया । ये कौन हैं ?

कल्याणी—ये मेरी रक्षा करने आये थे, सो इन्हें चोट आगई है ।

सगर०—तुम कौन हो ?

अजय०—मैं सेनापति गोविंदसिंहका पुत्र अजयसिंह हूँ और यह मेरी बहन कल्याणी है ।

सगर०—कौन ? महाबतखाँकी स्त्री कल्याणी ?

अजय०—हाँ वीरवर ! आप कौन हैं ?

सगर०—मैं उसी महाबतखाँका पिता, सगरसिंह हूँ ।

तीसरा दृश्य ।

स्थान—जोधपुरके महाराज गजसिंहका राजमहल ।

समय—प्रभात ।

[मारवाड़पति गजसिंह, पारिषद हरिदास, गजसिंहके पुत्र अमरसिंह और दूतके वेशमें अरुणसिंह ।]

गजसिंह—दूत ! मेवाड़के महाराणाजीसे कह दो कि हम इस विवाहसे सहमत नहीं हो सकते । जो लोग सम्राट्के विद्रोही हैं हम उनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध रखना नहीं चाहते । क्यों जी हरिदास ?

हरिदास—जी महाराज, बहुत ठीक ! अवश्य ऐसा ही होना चाहिए ।

अरुण०—महाराज ! हमारे महाराणा विद्रोही कैसे हुए? मेवाड़ तो अभी तक मुगलोंके अधीन ही नहीं हुआ। जिस स्वाधीनताकी वह इतने दिनोंसे रक्षा करता आ रहा है उस स्वाधीनताकी रक्षा करनेके प्रयत्नका नाम तो विद्रोह नहीं हो सकता।

गज०—नहीं, इसीका नाम विद्रोह है। ऐसी दशामें जब कि सारा राजपूताना सिर झुका कर मुगलोंकी प्रभुता स्वीकार करता है, अकेला मेवाड़ क्यों कर सिर उठाये रहेगा ?

अरुण०—मैं समझ गया। महाराजके मनमें ईर्ष्या हो रही है। सब पर्वतोंके शिखरोंपरसे गौरवकी किरणें उतर गई हैं, केवल मेवाड़के पर्वतोंको वे किरणें घेर रही हैं,—इसीको महाराज सहन नहीं कर सकते। सारे राजपूत राजाओंके सिर नंगे हैं, केवल मेवाड़के राणाका मुकुट उनके मस्तकको सुशोभित कर रहा है, यह दृश्य अवश्य ही महाराजकी आँखोंका काँटा हो सकता है। लेकिन महाराज ! इस गौरवसे महाराणाजीने तो आपको वंचित नहीं किया है; आप लोगोंने स्वयँ ही अपने आपको उससे वंचित किया है। इसमें राणाजीका कोई दोष नहीं है।

गज०—दूत ! तुम बड़े साहसी और धृष्ट हो। महाराज गजसिंहके सामने ऐसी बातें और कोई नहीं कह सकता। राणा यदि ऐसे ही मूढ़ उद्धत और उन्मत्त हों जो वे समझते हों कि हम केवल बीस हजार राजपूतोंको ले कर ही भारतसम्राटका मुकाबला करेंगे, तो यह उन्मत्तता उन्हींको शोभा देगी।

अरुण०—महाराजका कहना यथार्थ है। यह उन्मत्तता उन्हींको शोभा देती है। इस प्रकार उन्मत्त होनेकी शक्ति आपमें नहीं है। आपने जो कुछ कहा है वह बहुत ही ठीक है।

गज०—दूत ! तुम अवध्य हो, नहीं तो—

अरुण०—खैर, इतनी मनुष्यता तो आपमें है। पर महाराज! भला, यह बात आपने कहाँसे सीखी कि दूत अवध्य है! आपके मुखसे इतनी बड़ी नीति, इतनी बड़ी बात, कैसे निकली!

गज०—दूत! हमारे धैर्य्यकी भी कोई सीमा है। जाओ और राणासे कह दो कि हम यह विवाह नहीं करना चाहते। जाओ—

अरुण०—महाराज! मैं जाता हूँ। पर एक बात कहे जाता हूँ। मैंने सुना है कि आपने दक्षिणमें बादशाहकी ओरसे अनेक युद्ध किये हैं, आपने गुजरात भी जीता है। मैं समझता हूँ कि इस बार आप मेवाड़ भी आवेंगे। इसके लिए मैं आपको निमंत्रण दिये जाता हूँ।

[अरुणसिंह जाना चाहते हैं।]

गज०—अच्छी बात है। ऐसा ही सही। लेकिन दूत, ठहरो। तुम भी हमारे साथ ही चलना।

अरुण०—क्या आप मुझे कैद करेंगे?

गज०—हाँ!—अमर! इसे कैद कर लो।

अमर०—यह क्यों पिताजी! यह तो दूत है! दूत पर अत्याचार करना क्षत्रियोंका धर्म्म नहीं है।

गज०—अमरसिंह! मैं तुम्हारे पास धर्म्माधर्म्म नहीं सीखना चाहता, तुम मेरी आज्ञाका पालन करो।

अमर०—पिताजी! मैं इस अन्यायपूर्ण आज्ञाका पालन नहीं कर सकता।

गज०—(बिगड़ कर) क्या तुम मेरी आज्ञाका पालन नहीं कर सकते? उद्धत बालक! सुनो, तुम मेरे सबसे बड़े पुत्र हो। पर यदि

तुम मेरी बात नहीं मानते तो भविष्यमें यह राज्य तुम्हें नहीं मिलेगा। सिंहासन मेरे छोटे पुत्र यशोवन्तसिंहका होगा।

अमर०—आप अपना राज्य रखिए। मुगलोंके पैरोंकी ठोकरों और करुणासे आपका जो सिंहासन बना है, उस सिंहासनपर बैठनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मुगलोंकी जूतियाँ सिर चढ़ानेके लिए मुझे कोई आग्रह नहीं है।

गज०—अच्छी बात है। इसके दण्ड-स्वरूप मैं तुम्हें इसी समय अपने राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा देता हूँ। जाओ।

अमर०—अभी जाता हूँ।

[अमरसिंह चले जाते हैं।]

गज०—(थोड़ी देर ठहरकर) जाओ दूत! मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।

चौथा दृश्य।

स्थान—महाबतखाँके महलका बाहरी भाग।

समय—रात।

[महाबतखाँ अकेले बैठे हैं।]

महाबत०—मैंने उसका परित्याग तो कर दिया है, पर फिर रह रह कर उसका ध्यान आता ही है। अब भी वह प्रेम-विह्वल और दमकता हुआ किशोरमुख मेरी आँखोंके सामन नाच रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो कोई रत्न खो गया है। मैंने उसका पत्र क्यों फेर दिया! ऐसे शुद्ध और सच्चे प्रेमकी इस प्रकार अवज्ञा करके मैंने बहुत ही अनुचित कार्य किया। मैं अब सोचता हूँ कि उस समय मेरा उसके पिताके प्रति जो क्रोध था उसके आवेशमें उसके उन्मुख प्रेमका तिरस्कार करके मैंने बहुत ही बुरा किया। यदि मुझे कहीं क्षमा माँ-

गनेका अवसर मिलता तो मैं दोनों हाथ जोड़कर उससे क्षमा माँगता। कौन ?

[एक पहरेदार आता है ।]

पहरेदार—खुदावन्द ! महाराज गजसिंह हुजूरसे मुलाकात करना चाहते हैं ।

महाबत०—गजसिंह ? जोधपुरके राजा ?

पहरे०—खुदावन्द !

महाबत०—जाओ, उन्हें यहीं ले आओ ।

[पहरेदार जाता है ।]

महाबत०—महाराज गजसिंहका हमारे यहाँ क्या काम ? कायर, अधम, मुगलोंका दास । लो वे आ ही गये ।

[गजसिंह आते हैं ।]

गज०—आदाब अर्ज है ।

महाबत०—तसलीमात। कहिए, आज महाराजने इस गरीबखानेको क्यों कर रौनक बख्शी ? क्या खबर है ?

गज०—बादशाह सलामतने जनाबको याद फरमाया है ।

महाबत—यह उनकी बहुत बड़ी इनायत है । शायद मेवाड़की चढ़ाई पर जानेके लिए मैं याद किया गया हूँ ।

गज०—जी हाँ, जनाब !

महाबत०—इस बारेमें मैं कई दफा बादशाह सलामतकी खिदमतमें अर्ज कर चुका। लेकिन फिर भी न मालूम क्यों वे बार बार इस तरह मुझे इज्जत बख्शते हैं ।

गज०—शाही फौज कई बार मेवाड़में शिकस्त खा चुकी है । सका बादशाह सलामतको बहुत मलाल है। इस बार लाचार होकर

उन्हें फिर आपकी तरफ इशारा करना पड़ा है। इस वक्त सिर्फ आप ही एक ऐसे बहादुर हैं जो उन्हें इस तौहीनसे बचा सकते हैं। आप उनके सबसे बड़े खैरख्वाह और मददगार हैं।

महाबत०—यह आप क्या फरमाते हैं?

गज०—जनाब! यह तो तमाम जहान जानता है।

महाबत०—हूँ! (इधर उधर टहलने लगते हैं।)

गज०— खाँ साहब! इस बार आप मेवाड़की लड़ाईमें जरूर हथियार उठावें। मैं यह जानता हूँ कि मेवाड़ आपका वतन है। मैं यह भी जानता हूँ कि राणा अमरसिंह आपके भाई हैं। लेकिन साथ ही यह बात भी खयाल रखनेकी है कि आप उसे एक मुद्दतसे बिलकुल ही छोड़ चुके हैं। आपने अपना असली मजहब भी छोड़ दिया है। मेवाड़के साथ आपका जो कुछ तअल्लुक था उसको आपने मुसल्मान होकर बिलकुल तोड़ दिया है। इस लिए अब आप फिजूल पसोपेश क्यों कर रहे हैं!

महाबत०—(कुछ कुछ स्वगत) अगर मेवाड़ मेरा वतन न होता!

गुज०—क्या वतन आपको जबरदस्ती अपनी गोदमें उठा लेगा? जरा आप एक बार मेवाड़ जाइए तो सही। अगर आप लड़नेके लिए न जायँ तो कमसे कम बिरादराना तौर पर ही जायँ। मेवाड़के लोग आपकी तरफ उँगलियाँ उठावेंगे और कहेंगे--" यही प्रतापसिंहके भतीजे हैं जो विधर्मी मुसलमान हो गये हैं। " बड़े बूढ़े आपको देखकर नफ़रतसे मुहँ फेर लेंगे, जवान आदमी गुस्से भरी नजरोंसे आपकी तरफ ताकेंगे और औरतें झरोखोंमेंसे आपको कोसेंगी। खाँ साहब! आप इस बातकी जरा भी उम्मेद न रक्खें कि राजपूत कभी आपको अपना भाई समझकर गले लगावेंगे।

महाबत०—हूँ ! (महाबतखाँ सोचने लगते हैं ।)

गज०—उम्रभर आपको मुगलोंके साथ ही तअल्लुक रखना पड़ेगा। उनकी तरक्कीके साथ आपकी तरक्की है और उनके ज़वालके साथ आपका ज़वाल है । खाँ साहब, आप मेरी बातो पर खूब गौर करलें ।

[संन्यासीके भेसमें सगरसिंह आते हैं ।]

सगर०—महाबत !

महाबत०—कौन ? पिताजी ! आप यहाँ और इस भेसमें कैसे !

सगर०—मैंने अब संन्यास ले लिया है ।

महाबत०—सो क्यों पिताजी !

सगर०—महाबतखाँ ! शायद तुम्हें आश्चर्य्य होता होगा और यह बात भी आश्चर्य्य होनेकी है । जिसने देश, जाति और धर्म्मको जलांजलि देकर अपना सारा जीवन नष्ट कर दिया और अपना अधिकांश समय विजातियोंकी करुणाका भिखारी बनकर गँवाया, वही अब अपने जीवनके सन्ध्या-कालमे फिर अपना मार्ग बदल रहा है ! लेकिन तुम जानते हो कि मै क्यों इस रूपमें उठ खड़ा हुआ हूँ ।

महाबत०—नहीं पिताजी—

सगर०—इसलिए कि इतने दिनोके बाद मैने स्नेहमयी मातृभूमिकी पुकार सुनी है । माताका वह आह्वान कैसा गम्भीर, कैसा करुण और कैसा गद्गद है !—महाबत ! तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते । अब मैं अपने पापोंका प्रायश्चित्त करता हूँ और तुमसे भी यही कहनेके लिए यहाँ आया हूँ कि तुम भी अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर डालो ।

महाबत०—अपने पापोंका ?

सगर०—हाँ अपने पापोंका। मैं स्वजनोंको छोड़कर मुगलोंका दास हुआ था। पर तुम मुझसे भी बढ़ गये। तुमने धर्म्म तक छोड़ दिया। इसी लिए तुम्हारे पापोंकी सीमा नहीं है।

महाबत०—पिताजी! मुझे तो अपना कोई पाप समझमें ही नहीं आता। यदि मेरा यही विश्वास हो कि इस्लाम धर्म्म सत्य——

सगर०—बेटा महाबतखाँ! तुम्हारा यह विश्वास किस प्रकार हुआ? तुमने कुरान अवश्य पढ़ा है और वह है भी बहुत अच्छा ग्रंथ। हिन्दूधर्म्म उसकी निन्दा नहीं करता और न उसके साथ इसका कोई विवाद ही है। लेकिन क्या तुमने अपना, अपने बाप-दादाओंका, व्यास, कपिल और शङ्कराचार्य्यका वह धर्म्म छोड़नेसे पहले उसके ग्रंथोंको भी पढ़ा था? तुम्हारे समान मूर्ख और अनक्षरको धर्म्माधर्म्मका विचार कैसे और कहाँसे हुआ? जिस धर्म्मका मूलमंत्र प्रवृत्तिका दमन और आत्मजय है, जिस धर्म्मका चरम विकाश सर्व्व भूतों पर दया करना है, और वह दया भी ऐसी जो केवल मनुष्य जाति तक ही परिमित न हो, बल्कि जिसके अनुसार एक चिउँटीका मारना भी निषिद्ध हो; उस धर्म्मको बिना विचार किये छोड़कर महाबतखाँ! तुम नहीं जानते कि तुमने कितना बड़ा पाप किया है।

महाबत०—पिताजी! मैं तो यह देखकर बहुत ही हैरान हो रहा हूँ कि आज आप——

समर०—कि आज मैं धर्म्मकी व्याख्या करने बैठा हूँ। हैरान होनेकी बात ही है। बल्कि मैं तो आप ही हैरान हो रहा हूँ कि आज मैं क्या बन गया! जो संसारमें धनके सिवा और कुछ कभी जानता ही न था, उसीने धर्म्मके लिए संन्यास ले लिया! लेकिन महाबतखाँ! ऐसा कोई हृदय नहीं है जिसमें उच्च प्रवृत्तिका, ऊँचा स्वर बजानेवाला

एक भी तार न बँधा हो। यदि संयोगवश किसी दिन घटनाकी उँगलीके आघातसे सहसा वह तार बज उठता है तो एक ही क्षणमें सारे हृदयमें उथलपुथल मच जाती है। आत्मा उस समय क्षुद्र स्वार्थकी केंचुलीसे मुक्त हो कर अनन्त आकाशकी ओर बढ़ा चला जाता है। यह बात उस दिन कल्याणीने मुझसे कही थी।

महाबत०—कल्याणीने ?

सगर०—हाँ, उस दिन उसीने मुझसे यह बात कही थी। इस समय भी उसकी वह बात मेरे कानोंमें संगीतकी स्मृतिके समान बज रही है। महाबतखाँ! क्या तुम्हें यह बात मालूम है कि कल्याणीके पिताने उसे घरसे निकाल दिया है ?

महाबत०—घरसे निकाल दिया है ? क्यों ? किस अपराधसे ?

सगर०—इसी लिए कि कल्याणी अब भी तुम्हारी—एक विधर्म्मीकी—पूजा करती है।

महाबत०—आपसे और उससे कहाँ भेंट हुई ?

सगर०—एक गाँवके पास एक टूटी फूटी कुटियामें।

महाबत०—पिताजी ! यही आपका उदार, अति उदार हिन्दूधर्म्म है न! मुसलमानोंके साथ हिन्दू इतनी घृणा, इतना विद्वेष करते हैं कि कल्याणीको उसकी पति-भक्तिका पुरस्कार 'घरसे निकल जाना' मिलता है। पिताजी! आप मुझसे प्रायश्चित्त करनेके लिए कहते हैं ? मैं प्रायश्चित्त करूँगा, और अवश्य करूँगा। लेकिन इस लिए नहीं कि मैं मुसलमान हो गया हूँ, बल्कि इस लिए कि मै किसी समय हिन्दू था। उसी हिन्दू होनेके पापका मैं प्रायश्चित्त करूँगा।—

सगर०—महाबत खाँ!—

महाबत०—पिताजी! हिन्दुओंके प्रति मेरे हृदयमें जो बची खुची थोड़ी बहुत अनुकम्पा थी उसे भी आज मैंने दूर कर दी। आजसे मैं रगरगसे, रोएँ रोएँसे मुसलमान हो गया।

सागर०—महाबतखाँ!

महाबत०—पिताजी! आप यह जानते हैं कि मैं बहुत ही थोड़ी बातें करता हूँ। और मैं एक बार जो प्रतिज्ञा कर लेता हूँ वह बहुत ही भीषण होती है।

सगर०—महाबतखाँ—

महाबत०—पिताजी! आप मेरा स्वभाव जानते हैं! अब आपके सारे उपदेश, सब युक्तियाँ, समस्त आदेश वृथा हैं।

[महाबतखाँ वहाँसे जाना चाहते हैं।]

सगर०—महाबतखाँ! यदि तुम्हारी इतनी अधिक अधोगति हो गई है तो जाओ, मरो। इसी अन्धकूपमें मरो, पचो। म्लेच्छ! विधर्म्मी! कुलाङ्गार!

[सगरसिंह चले जाते हैं। सगरसिंहके चले जानेपर महाबतखाँ बहुत ही उत्तेजित भावसे इधर उधर टहलते हैं।]

महाबत०—(कुछ देर बाद) इतना विद्वेष! इतना आक्रोश! यदि ऐसी जाति बार बार मुसलमानों द्वारा पद-दलित हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? यदि मुसलमान इसके बदलेमें उनके साथ सूद व्याजसहित और भी अधिक घृणा करें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? यही इन लोगोंका उदार—अति उदार—सनातन हिन्दू धर्म्म है! मुसलमानधर्म्ममें और चाहे जो हो, पर इतनी उदारता इतना महत्त्व तो है कि वह किसी दूसरे विधर्म्मीको अपनी छातीसे लगाकर अपनेमें मिला लेता है। और हिन्दू धर्म्म?—कोई विधर्म्मी सैकड़ों तपस्यायें करने

पर भी उसमें नहीं मिल सकता! इतना गर्व! इतना अहंकार! इतनी स्पर्धा! क्या अच्छा होता यदि मैं यह अहंकार चूर्ण कर सकता—(गजसिंहसे) महाराज! मैं मेवाड़की चढ़ाई पर जाऊँगा। जाइए, आप बादशाह सलामतसे मेरी तरफ़से यही अर्ज कर दीजिए।

[गजसिंह चकित होकर देखते हैं।]

महाबत०—महाराज! आपको ताज्जुब क्यों होता है? आप जानते है, मैं क्यों मेवाड़की चढ़ाई पर जाता हूँ?

गज०—इसलिए कि आप बादशाहके फरमाँबरदार और खैर-ख्वाह हैं।

महाबत०—जी नहीं, इस लिए नहीं, बल्कि हिन्दू धर्म्मको जड़से उखाड़ फेंकनेके लिए और आप लोगोकी सारी कौमको मटियामेट करनेके लिए। मैं उसका नामोनिशान भी न रहने दूँगा। समझ लिया! अब आप बादशाह सलामतसे जाकर अर्ज कर दें।

[गजसिंह अभिवादन करके एक ओर और महाबतखाँ दूसरी ओर चले जाते हैं।]

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—जहाँगीरका दरबार। **समय**—सबेरा।

[बादशाह जहाँगीर, दरबारी और हिदायतअलीखाँ।]

जहाँ०—यह हतक तमाम उम्र न भूलेगी। आखिर परवेजको हो क्या गया? क्या उसमे इतनी भी कूवत न थी? उसने शिकस्त क्यों कर खाई?

हिदायत०—जहाँपनाह! मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि शाह-जादा साहबकी शिकस्त खानेकी जरा भी ख्वाहिश न थी।

जहाँ०---तुम सब [illegible] हो, किसी मर्जकी दवा नहीं हो।

हिदायत०---बेशक। जहाँपनाहका फरमाना बहुत ही बजा है।

जहाँ०---हिदायत ! तुम तो जंगमें कैद हो ही गये थे, वह तो राणाकी मेहरबानीसे किसी तरह तुम्हारी रिहाई हो गई। अब्दुल्लाने तो खैर लड़कर हीं जान दी; लेकिन तुम तो वहाँ मर भी न सके !

हिदायत०---बेशक, जहाँपनाह! यह बन्दा तो खुद चाहता था कि जंगमें मारा जाय। मगर क्या अर्ज करूँ---मेरी बीबीको यह बात बिलकुल पसन्द न आई।

जहाँ०---चुप---

[सगरसिंह आते हैं।]

जहाँ०---यह लो, राजा सगरसिंह आगये। राजा साहब !

सगर०---जहाँपनाह!

जहाँ०---आप मेवाड़के राणा बनाये जाकर चित्तौर भेजे गये थे; पर सुना कि आपने चित्तौरका किला राणा अमरसिंहके सपुर्द कर दिया।

सगर०---जी हाँ खुदावन्द !

जहाँ०---किसके हुक्मसे ?

सगर०---मैंने उसके लिए किसीके हुक्मकी जरूरत नहीं समझी।

जहाँ०---क्यों ?

सगर०---इस लिए कि मैंने समझा कि इन्साफकी नजरसे राणा अमरसिंह ही उसके मालिक हैं।

जहाँ०---आपने समझा ?

सगर०---बेशक। मैंने सुना था कि शाहंशाह अकबरने बाकायदा लड़कर चित्तौरपर कब्जा नहीं किया था। उन्होंने धोखेसे जयमलकी जान ली थी।

जहाँ०—राजा साहब ! आप [illegible] तरहका इन्साफ करनेके काबिल हुए ?

सगर०—जिस दिन मैंने एक नई रोशनी, एक नया नूर देखा ।

जहाँ०—नया नूर देखा ?

सगर०—जी हाँ । मैंने एक तया नूर देखा। मेरी आँखोंके सामनेसे एकाएक एक परदा उठ गया । महाराज रामचंद्रके वक्तसे अब तकका मेवाड़का गुजरा हुआ जमाना मेरी आँखोंके सामने फिर गया । बाप्पा-रावलकी फतहके किस्से, समरसिंह और चूँडाजीकी अपने मुल्कके लिए जान्निसारी, कुम्भकी बहादुरी वगैरा उम्दा उम्दा तमाशे देखे । एकाएक वहाँ कुहरा सा छा गया और उसीमें मुझे प्रतापसिंहकी—अपने भाई प्रतापसिंहकी—तलवार चमकती हुई दिखलाई दी । मै अपने आपको लानत मलामत करने लगा ।

जहाँ०—उसके बाद क्या हुआ ?

सगर—मेरे मनमे इस बातका खयाल पैदा हुआ कि मै भी उन्हींके खानदानका हूँ; मगर मैने उनके दुश्मनोंका साथ देकर बहुत ही बुरा किया । तो भी मैने अपने आपको समझानेकी कोशिश की कि मै जो कुछ कर रहा हूँ वह बहुत ही मुनासिब है । उसके बाद एक दिन मैंने और भी अजीब नज़ारा देखा ।

[मारे गर्वके सगरसिंहकी आँखोमें जल आ जाता है ।]

जहाँ०—हाँ हाँ, कहे चलिए । क्या देखा ?

सगर—वह बात पुराने जमानेकी नही है, तवारीखकी नहीं है और पुराणोंके किस्सोंकी नहीं है । मैने देखा कि मेरी लड़की—मुगलोंके इसी गुलाम बने हुए शख्सकी लड़की—अपने उसी मुल्कके लिए फटे पुराने कपड़े पहन कर जंगलोंमें घूमती फिरती है जिस मुल्ककी

आजादी छीननेके लिए मैं मुगलोंके साथ मिला हूँ। मेरी आँखोंमें आँसू भर आये, मेरा गला रुँध गया; शर्म्म, फक्र, रिआजत और मुहब्बतसे मेरा दिल भर आया। मुझसे न रहा गया। मै चित्तौरका किला अपने भतीजेके सपुर्द करके चला आया।

जहाँ०—राजा साहब! आप मरनेके लिए तो तैयार हो कर आये है न?

सगर—बेशक जहाँपनाह! मै मरनेके लिए पूरी तैयारी करके आया हूँ। आगे मुझे मौतसे बहुत डर लगता था, लेकिन उस दिनसे मैने एक नया सबक सीखा।

जहाँ—वह कौनसा सबक?

सगर०—जान्-निसारीका सबक। दुनियामे दो बादशाहतें है, उनमेंसे एकका नाम खुदगरजी और दूसरीका नाम जान्-निसारी है। एककी पैदाइश दोजखसे है और दूसरीकी बहिश्तसे। एकका मालिक शैतान है और दूसरीका मालिक परमेश्वर या खुदा। मै अब तक खुदगरजीके मुल्कमे रहता था, पर उस दिन मैंने जान्-निसारीका मुल्क देखा। उस मुल्कके मालिक बुद्ध, ईसा और गौराग है; उस मुल्कका कानून मुहब्बत रिआजत (भक्ति) और रहम है। वहाँका इन्तजाम है खिदमतगुजारी, सजा है मेहरबानी और इनाम है जान्-निसारी। उसी दिनसे मै उस मुल्ककी रिआया बन गया। जिन हाथोमे मैने आज तक कभी तलवार नहीं पकटी थी, उन्हीं हाथोमे मैने उस दिन गरीबोंकी मददके लिए तलवार पकड़ी और तब मुझे अपने कन्धों पर डाकुओंकी तलवारकी चोट फूलोंकीसी चोट माळूम होने लगी।

जहाँ०—उसके बाद क्या हुआ?

सगर—उसके बाद मै मौतके जरिये अपने पुराने गुनाहोंका बदला चुकानेके लिए यहाँ चला आया। आगे मै मरनेसे बहुत डरा करता

था; लेकिन अब मुझे उससे जरा भी डर नहीं लगता। जो दिलोजानसे प्यार कर सकता हो और जिसने जान्निसारीका सबक सीखा हो, उसे मौतका क्या डर?

जहाँ०—बेहतर है। अब आप मरनेके लिए तैयार हो जाइए।

[जहाँगीर एक चोबदारको इशारा करता है। चोबदार आगे बढ़ आता है।]

सगर—जहाँपनाह! इसके लिए किसी दूसरे शख्स या जल्लादकी जरूरत नहीं हैं। (कमरसे कटार निकाल कर अपनी छातीमें भोंक लेते हैं और वहीं गिरकर दोनों हाथ पसार कर कहते हैं)— "यही खून मेरे गुनाहोंका बदला हो।"
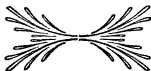
चौथा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान-उदय सागरका किनारा। **समय**—चाँदनी रात।

[राणा अमरसिंह एक चबूतरे पर बैठे हैं। उदय सागरकी लहरोंका शब्द सुनाई पड रहा है। पास ही एक वृक्ष पर एक कोयल बोल रही है। राणा आँखें बन्द करके उसी का कुहुकना सुन रहे हैं।]

[कुछ दूर पर कुछ स्त्रियाँ ' होली.' गाती और नाचती है।]

पीलू खम्माच।

बन बसी बजावत बनवारी ॥

देह गेहको नेह न राखत,
नीर छीरकी सुधि बिसरावत,
बंसी सुनि बनको ही धावत,
हैं व्याकुल सब व्रजनारी ॥
चहक उठीं कुंजनमें चिरियाँ,
लागी चलन वायु यहि बिरियाँ,
चटक उठीं फूलनकी कलियाँ,
खूब बनी हैं मतवारी ॥

चन्द्किरन जमनामें गेरत,
राधा राधा बंसी टेरत,
राधा भौंचक इत उत हेरत,
कोयल कूक रही डारी॥
है व्याकुल निकसीं सब बामा,
तजि तजिके निज घरको कामा,
देखन चलीं चतुर घनश्यामा,
है कैसो बंसीधारी॥

राणा—ये सब होली खेलने और गानेमें ही मग्न हैं। यदि इस समय इनके पैरों तले भूकम्प भी हो जावे तो कदाचित् इन्हें माल्म न हो! क्या संसार है! मनुष्यको ये ही सब खिलौने देकर ही तो भुला रक्खा है! नहीं तो क्या कोई कभी इस मरु-भूमिमें रहनेकी इच्छा करता? संसार बड़ा छलिया है। यह लो मानसी आगई!

[मानसी आती है।]

मानसी—पिताजी! आप अभी तक यहीं बैठे हैं! चलिए, महल-में पधारिए। यहाँ ठण्ड पड़ती है।

राणा—जरा ठहर जाओ; चलते हैं। यहाँ उदयसागरके किनारे बैठनेसे मन जरा शान्त होता है।—मानसी!

मानसी—हाँ पिताजी!

राणा—क्या तुम्हें भी कभी इस बातका ध्यान आता है कि संसार बड़ा छलिया है?

मानसी—छलिया?

राणा—हाँ छलिया। मनुष्य कहीं विचार करके—चिन्ता करके अमर न हो जाय, इसी लिए संसार उसके मनको तरह तरहकी और और चिन्ताओंमें फँसाये रहता है।

मानसी—नहीं पिताजी ! मैं तो संसारको इतना बुरा नहीं समझती।

राणा—यह चाँदनी रात देखो! ये लहरोंके थपेड़ोंके शब्द सुनो! इस सुन्दर वायुका अनुभव करो ! इन सब बातोंसे मनुष्यको अलग रखनेके लिए संसार उसे बल-पूर्वक खींच कर जीवनके छोटे मोटे सुखों और दुखोंकी ओर लिये जा रहा है। बेटी ! अब तो मैं इस संसारको त्याग दूँगा। यह संसार खाली माया है।

मानसी—यदि इसे माया ही मान लें तो भी यह बहुत ही मनोहर माया है पिताजी ! सच मुच यह बहिःप्रकृति बहुत ही सुंदर है। यह हम लोगों पर बहुत कृपा रखती है। जब हम लोग ग्रीष्म ऋतुकी भीषण गरमी-से झुलस जाते हैं तब तुरन्त ही मनोहर और गम्भीर गर्जन करती हुई वर्षा ऋतु आ जाती है और जल बरसा कर हम लोगोंको शीतल कर देती है। जब बहुत कड़े जाड़ेसे हम लोग ठिठुर जाते हैं तब वसन्त ऋतु आकर अपनी मन्द, सुगन्धित वायुसे शीतके परदको उड़ा देती है। जब हम लोग दिनकी तीव्र ज्योतिसे घबरा जाते हैं तब रात आकर माताकी तरह हम लोगोका व्यथित मस्तक अपनी गोदमें ले लेती है। पर यहीं उसकी कृपाका अन्त नहीं हो जाता।

राणा—तो उसका अन्त कहाँ होता है ?

मानसी—मनुष्यके चिन्ता-जगतमें। पिताजी ! आप इस सरोवरको देख रहे हैं ?

राणा—हाँ बेटी, देख रहा हूँ।

मानसी—इस पर चन्द्रमाकी किरणें पड़ती हुई दिखाई देती हैं न ?

राणा—हाँ बेटी, दिखाई देती हैं।

मानसी—आप इसे पकड़ सकते हैं ?

राणा—किसे ?

मानसी—इस चाँदनीको, जलके इन थपेड़ोंके कलकलको । जिस समय अँधेरेमें यह जलतल छिप जायगा और हवा रुक जायगी, उस समय यह सौन्दर्य्य, यह संगीत कहाँ जायगा ?

राणा—तुम ही बतलाओ बेटी, कहाँ जायगा ?

मानसी—ठीक तो नहीं कह सकती कि कहाँ जायगा, पर इतना अवश्य है कि वह लुप्त नहीं होगा । वह रहेगा और बिखर जायगा—विरहीकी स्मृतिमें, कविके स्वप्नमें, माताके स्नेहमें, भक्तकी भक्तिमें, और मनुष्यकी अनुकम्पामें । मनुष्यका जो कुछ सुन्दर है, पृथिवीकी ये किरणें, सुगन्ध, झंकार नृत्य, सबको प्रकृतिने गढ़ा है । नहीं तो इस सौन्दर्य्यकी सार्थकता कहाँसे हो ?

राणा—बेटी, क्या मनुष्यका कुछ 'सुन्दर' कहे जाने योग्य है ? हम जिस समय अन्नका एक ग्रास मुँहकी ओर ले जाते हैं, उस समय सारा संसार ललचाई हुई आँखोंसे उस ग्रासकी ओर देखता है । मानो उस ग्राससे हमने उसे वंचित कर दिया हो । इतना लालच ! इतनी ईर्ष्या ! इतना द्वेष !

मानसी—यह तो लोगोंकी मानसिक व्याधि है । यदि यह व्याधि न होती तो मनुष्यकी अनुकम्पाके लिए स्थान ही नहीं रहता ! तब किसका दु:ख दूर करके, किसका उद्धार करके मनुष्य सुखी होता ? पिताजी ! क्या संसारको अधम मानकर छोड़ देना चाहिए ? कभी नहीं । मनुष्य बड़ा दुखी है, उसका दु:ख दूर करना चाहिए । संसार बड़ा दीन है, उसका उद्धार करना चाहिए ।

राणा—तुम्हारी बात बहुत ठीक जान पड़ती है । हमारा सिर इस समय बहुत चकरा रहा है । हम कुछ सोच समझ नहीं सकते ।

नैपथ्यसे—मानसी !—मानसी !

मानसी—माँ, आती हूँ। पिताजी, अब आप भी पधारें। अँधेरा हो चला।

[मानसी जाती है।]

राणा—यह एक स्वर्गकी कहानी है, नीहारिका है, संसारका सारभूत सौन्दर्य्य है। सुन्दर हवा बह रही है, आकाशमें एक भी बादल नहीं है, संसार बिलकुल शान्त और निस्तब्ध है। केवल उदयसागरके ऊपरसे होकर संगीतकी लहरें जा रही हैं। माछ्म होता है कि बहुतसी किशोर स्वर्णाभायें आकर इन्हीं लहरोंमें स्नान कर रही हैं। ये तरंगें उन्हींका मधुर हास्य है। पेड़ोंके पत्ते चाँदनीमें हिल रहे हैं और हवाके साथ खेल रहे हैं, यह मर्मर शब्द उनकी क्रीड़ाका कल-रव है। जान पड़ता है कि जड़ पदार्थ भी सौन्दर्य्यका अनुभव करते हैं।

[रानी आती है।]

रानी—महाराज !

राणा—जरा चुप रहो; हम स्वप्न देख रहे हैं।

रानी—क्या जागे जागे ही ? तब तो मैंने हार मानी।

राणा—जाने दो, मोह-भंग हो गया। हाँ, अब तुम कहो, क्या हुआ ?

रानी—अब बाकी ही क्या रह गया ?—आजकलकी लड़कियाँ अपने माँ-बापकी बात तो सुनती ही नहीं। उस दिन गोविन्दसिंहकी लड़की और लड़का दोनों अपने बापकी एक जरासी बात पर घर छोड़ कर चले गये। और कल—

राणा—फिर वही संसारका रोना, दुनियाका निकम्मा चरखा।

रानी—न जाने इन कलयुगकी लड़कियोंको क्या हो गया है ! हम लोगोंका भी तो कभी लड़कपन था।

राणा—उस समय सतयुग रहा होगा। हम बहुत दिनोंसे यही देखते आ रहे हैं कि माताओंका जन्म तो सदा सतयुगमें होता है, पर उनकी लड़कियाँ जनमती हैं कलियुगमें। अच्छा अब इन सब बातोंको छोड़ो और यह बतलाओ कि हमें क्या करना होगा।

रानी—मानसीका ब्याह करना हो तो अभी कर दीजिए; नहीं तो फिर आगे चल कर उसका ब्याह न होगा।

राणा—हमें भी ऐसा ही जान पड़ता है कि मानसीका ब्याह न होगा। हमारी समझमें उसका जन्म ब्याह करनेके लिए हुआ भी नहीं है।

रानी—बस बस, मैं समझ गई। आपके भी ये लच्छन अच्छे नहीं हैं! आप जागे जागे स्वप्न देखते हैं!

राणा—भला हम स्वप्न तो देखते हैं; तुम तो वह भी नहीं देखतीं।

रानी—अब क्या होगा?

राणा—कौन जाने! देखो, क्या होता है!

रानी—देखें क्या? जोधपुरसे आदमी लौट कर अभी तक नहीं आया। सत्यवतीके लड़केको जोधपुर भेजा था, वह कहाँ लौटा है!

राणा—अरुणसिंह वहाँसे लौट आया है।

रानी—लौट आया! ब्याह कबका पक्का हुआ?

राणा—महाराज हमारी कन्याके साथ अपने पुत्रका ब्याह न करेंगे।

रानी—क्यों?

राणा—सुना है कि वे हमसे कुछ नाराज हैं!

रानी—क्यों?

राणा—यही कारण मालूम होता है कि युद्धमें हम जीते और मुगल हार गये।

रानी—मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मानसीका ब्याह न होगा। अब हो चुका ब्याह। ऐसे झमेलोंमें कहीं ब्याह होता है!

राणा—हम भी यही समझते हैं। मानसीका जन्म ब्याहके लिए नहीं हुआ है। यह सब भूल है।

रानी—कैसी भूल!

राणा—जोधपुरके राजकुमारके साथ मानसीके ब्याहका प्रस्ताव करना भूल; इतनी सेना लेकर मुगलोंके साथ युद्ध करने जाना भूल; हमारा तुम्हारा ब्याह हुआ सो भी भूल; हमारा राज्य, हमारा जीवन,—सब भूल।

रानी—यदि महाराज मुझसे ब्याह न करते तो मै समझती हूँ कि वह भी एक भूल होती।—क्यों, हँसे क्यों?

राणा—और हमने सुना है कि महाराज आगरे गये हैं।

रानी—क्यों?

राणा—वहाँ जाकर बादशाहके कान भरेंगे और मेवाड़ पर चढ़ाई करनेके लिए सेना भिजवावेंगे।

रानी—फिरसे?—आप हँसते हैं! यह भी क्या हँसनेकी बात है?

राणा—इससे बढ़कर हँसनेकी और कौनसी बात मिलेगी! रानी, तुम भी खूब हँस लो।

रानी—क्या मैं भी आपके साथ पागल हो जाऊँ?

राणा—अरे बड़ी बढ़िया खबर है रानी। अबकी सब नष्ट हो जायगा। कुछ भी न बचेगा।

रानी—जो चाहे सो हो, मैं यह सब सुनना नहीं चाहती । यह ब्याह जरूर होना चाहिए ।

राणा—किस तरह ?

रानी—आप मारवाड़ पर आक्रमण करें ।

राणा—रानी ! इतने दिनोंमें आज इस बातका एक प्रमाण मिला कि तुम क्षत्राणी हो । तुम जानती हो, शक्तिसे बड़ी भक्ति होती है। जोधपुरके महाराजमें जो मुगल-भक्ति है, वह हममें नहीं है। हममें केवल अपनी शक्ति है; सो वह भी समाप्त हो चली है ।

रानी—तब क्या यह अपमान चुपचाप सह लेंगे ?

राणा—नहीं तो और क्या करेंगे ? चुपचाप सहन न करेंगे तो रो लेंगे, चिल्ला लेंगे । देखो, भोजन बना कि नहीं ? डरकी कोई बात नहीं है । अबकी बार सर्वस्व नष्ट हो जायगा । जिस जातिमें इतनी क्षुद्रता हो, उसकी रक्षा स्वयं परमेश्वर भी नहीं कर सकता; मनुष्यकी तो बात ही क्या है !—जाओ ।

रानी—लेकिन उसमें आपका क्या अपराध है ?

राणा—अपराध ! हमारा अपराध यही है कि हम और महाराज दोनों एक ही जातिके हैं । यदि किसी एक बैठनेवालेके दोषके कारण नाव डूबती है, तो उसके निर्दोष और निरपराध साथी भी उसीके साथ डूब जाते हैं ।—जाओ ।

[रानी जाती है ।]

राणा—आकाश कैसा काला है !

[राणा चले जाते हैं । मानसी फिर आती है ।]

मानसी—अजयसिंह विदेश चले गये ! भला जानेसे पहले एक ार भेंट तो कर जाते ! केवल एक पत्रमें—छोटेसे सूखे पत्रमें ही आकर

और इस बातको न जतलाकर कि मैं विदेश जाता हूँ, 'सदाके लिए बिदा' ले जाते! अजय! अजय!—नहीं, तुम बड़े निष्ठुर हो। मैं तुम्हारे लिए शोक न करूँगी। चन्द्रमाकी ज्योति इतनी क्षीण क्यों है? उदयसागरकी छाती अचानक इतनी मलीन क्यों हो गई? प्रकृतिके मुखपरकी वह हँसी कहाँ चली गई? गाती है—

खम्माज।

सोइ चन्द्र-वदन मोहि भावत है॥
करत प्रकाशित जो वसुधाको
मधुर रूप दरसावत है॥
पास रहत जब, खिलत चाँदनी
दूर भये तम छावत है।
चन्दा जात, जात नहिं सौरभ
फूलनसों जो आवत है॥
समझ परत नहिं भेद कहा है
कोयल कूक सुनावत है।
वाके बिना लगत जग सूनो
मन रहि रहि घबरावत है॥×

दूसरा दृश्य।

स्थान—मेवाड़के पास महाबतखाँका खेमा। **समय**—प्रभात।

[महाबतखाँ, शाहजादा परवेज और महाराज गजसिंह खड़े हुए बातें कर रहे हैं।]

महाबत०—शाहजादा साहब! अब आप देर न करें। इस एक लाख फौजको लेकर आप चित्तौरका किला घेर लें।

× यह 'मालकोस' रागमें भी गाया जा सकता है।

परवेज—बहुत खूब ।

[शाहजादा परवेज जाते हैं ।]

महाबत०—और महाराज! आप एक सिरेसे मेवाड़के सारे गाँव जलाना शुरू करें। अगर आपको कोई रोके तो फौरन् उसे कत्ल कर डालें। मैं जानता हूँ, इस काममें आप बहुत ही काबिल और होशियार हैं। लेकिन एक बातका आप जरूर खयाल रक्खें कि औरतों पर किसी किस्मका जुल्म न होने पावे।

गज०—बहुत खूब! मैं मेवाड़में एक भी राजपूत न रहने दूँगा।

महा०—जी हाँ महाराज, मैं भी यह बात बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि मुसलमान राजपूतोंके उतने ज्यादा जानी दुश्मन नहीं हैं जितने राजपूत खुद अपने भाइयोंके हैं। हिंदुस्तानकी पुरानी तवारीखें पढ़ कर मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि हिन्दुओंको अपने भाइयों पर जुल्म करने और उन्हें तकलीफ पहुँचानेमें जितना मजा मिलता है उतना और किसी काममें नहीं मिलता। मैं यह बात बहुत अच्छी तरह समझता हूँ कि राजपूतोंका नामोनिशान जितनी अच्छी तरह आप मिटा सकेंगे उतनी अच्छी तरह और कोई न मिटा सकेगा। इसी लिए मैंने यह काम आपके सुपुर्द किया है। महाराज साहब! अब आप जा कर अपना काम शुरू करें।—जाइए।

गज०—बहुत खूब!

[गजसिंह जाते हैं।]

महाबत०—हिन्दू! राजपूत! मेवाड़! खबरदार! यह एक कौमके साथ दूसरी कौमका मुकाबला नहीं है; यह एक मजहबका दूसरे मजहबके साथ मुकाबला है। देखें कौन जीतता है। (जाते हैं।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—उदयपुरका राज-प्रसाद । **समय**—रात ।

[राणा अमरसिंह और सत्यवती ।]

राणा—क्या इस बार महाबतखाँ लड़ने आये हैं ?

सत्य०—हाँ महाराज ! इस बार महाबतखाँ ही आये हैं और उनके साथ एक लाखसे अधिक सेना है।

राणा—(ठंडी साँस लेकर) सत्यवती ! मैंने तो पहले ही कह दिया था।

सत्य०—क्या ?

राणा—यही कि अबकी कुछ न बचेगा, सब नष्ट हो जायगा। सारा राजपूताना तो चला गया, क्या अकेला मेवाड़ सिर ऊँचा किये रहेगा ? क्या यह बात भी विधातासे देखी जा सकती है ? इस बार मेवाड़ भी जायगा। सत्यवती ! तुमने नीचा सिर क्यों कर लिया ? यह तो बड़े आनन्दकी बात है !

सत्य०—महाराज ! क्या यह आनन्दकी बात है ?

राणा—क्यों ? आनन्दकी बात क्यों नहीं ? बिछौने पर पड़ा पड़ा मेवाड़ और कब तक मृत्युकी यन्त्रणा भोगता रहेगा ? इस बार उसकी यन्त्रणाका अन्त हो जायगा।

सत्य०—तो क्या अब महाराज युद्ध न करेंगे ?

राणा—युद्ध न करेंगे ? युद्धके सिवा और करेंगे ही क्या ? इस बार सचमुच युद्ध होगा। अब तक तो लड़क-खेलवाड़ था। इस बार बड़ा आनन्द होगा, महा-विप्लव होगा। अबकी भाई भाईमें लड़ाई है। सारा भारत उसका तमाशा देखेगा।

सत्य०—मैंने सुना है कि महाबतखाँके साथ जोधपुरके महाराज गजसिंह भी आये हैं।

राणा—ओह! ठीक है। तो क्या उन्होने हमारा निमन्त्रण स्वीकार कर लिया? हमने पहले ही सोचा था कि क्या महाराज हम लोगोंसे इतने नाराज हो जायँगे कि हमारा निमन्त्रण भी स्वीकार न करेंगे?

सत्य०—वही राजपूतकुलागार—

राणा—क्या कहा?—अब कभी ऐसा न कहना। वह परम भक्त, परम वैष्णव है। हम ही मेवाड-वशके कुलागार है जो इतने दिनों तक हमने इस एक ईश्वरको न माना!—" दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।"—गजसिंह! वाह कैसा अच्छा नाम है! एकहीमे गज भी और सिंह भी! सूँड भी हिलाते है और केसर भी हिलाते हैं।—खूब!

सत्य०—राजपूत होकर राजपूतोसे लडने आये है।

राणा—बिना इसके यज्ञनाश सम्पूर्ण कैसे होगा? महादेवके साथ जब तक नन्दी भृगी न आवेंगे तब तक काम कैसे चलेगा!—शास्त्रोंकी बात कभी झूठ नही होती।

सत्य०—हा हतभाग्य मेवाड! (अपनी आँखोंके आँसू पोंछती है।)

राणा—सत्यवती! विधाताने जिस समय भारतवर्षको सिरजा था, उस समय उसके भाग्यमे लिख दिया था कि इसका सर्वनाश स्वय उसकी सन्तान ही करेगी। तक्षशीलको याद करो, जयचन्द्रकी बात याद करो, मानसिंह और शक्तसिंहको लो और उन्हींके साथ साथ महाबतखाँ और गजसिंहको भी देखो। ठीक मिलान मिलता है न? बिलकुल अक्षर अक्षर मिलता है! विधाताका लेख कभी व्यर्थ नही होता। जाओ सत्यवती, अब मै सेना तैयार कराता हूँ।

[सत्यवती जाती है।]

राणा—यदि कोई जाति नष्ट होती है, तो वह अपने ही दोषसे नष्ट होती है,—इसी प्रकार नष्ट होती है। जब जाति निर्जीव हो जाती

है तब व्याधि प्रबल हो उठती है और घर घर ऐसे ही विभीषण जन्म लेते हैं।

[गोविन्दसिंह आते हैं।]

राणा—गोविन्दसिंहजी, कहिए क्या समाचार है ?

गोविन्द०—महाराज ! महाबतखाँ निरीह ग्रामवासियोंके घर जला रहे हैं।

राणा—जला रहे हैं ? उचित ही तो करते हैं।

गोविन्द०—उचित करते है ? हम इसका उनसे पूरा पूरा बदला लेंगे।

राणा—अवश्य ! नहीं तो मेवाड़का ध्वंस पूरा कैसे होगा।

गोविन्द०—महाराज युद्ध तो अवश्य ही करेंगे ?

राणा—युद्ध न करेंगे तो और करेंगे ही क्या ? गोविन्दसिंहजी ! राजपूतसेना कितनी होगी ? पाँच हजार तो होगी न ? वही बहुत है। मरनेके लिए इससे अधिक सेनाकी आवश्यकता नहीं होती ! महाबतखाँकी सेना तो प्रायः एक लाख होगी न ? होने दो, उससे क्या होता जाता है।

गोविन्द०—राणा ! (सिर नीचा कर लेते हैं।)

राणा—क्यों गोविन्दसिंहजी ! आपने भी सिर नीचा कर लिया ? उठिए, जागिए। आज बड़े आनन्दका दिन है। घर घर मंगलवाद्य बजने दीजिए। जगह जगह लाल निशान उड़ने दीजिए। उदयपुरके दुर्ग पर एक बार अच्छी तरह मेवाड़की लाल ध्वजा फहराने दीजिए। खूब अच्छी तरह देख लीजिए। फिर दो दिनके बाद वह देखनेको न मिलेगी।

गोविन्द०—महाराज ! हम लोग लड़ेंगे और मरेंगे। लेकिन दुःख यही है कि तब भी माताकी रक्षा न कर सकेंगे।

राणा—इसमें दुःख काहेका ? माता किसकी नहीं मरती ? हमारी माता भी मरेगी। माता किसीकी बहुत दिनों तक नहीं जीती। उसीके साथ साथ हम भी मरेंगे।

गोविन्द०—महाराज ! ऐसा ही हो।

राणा—हाँ ! ऐसा ही होगा। गोविन्दसिंहजी आइए, मरनेसे पहले एक बार अच्छी तरह गले तो मिल लें। (गले मिलते हैं।) अच्छा, अब जाइए, मरनेकी तैयारी कीजिए।

[गोविन्दसिंह जाते हैं। रानी आती है।]

राणा—रानी खूब उत्सव करो ! आनन्द मनाओ !

रानी—क्या मानसीका ब्याह निश्चित हो गया ?

राणा—मानसीका नहीं मेवाड़का ब्याह होगा।

रानी—मेवाड़का ब्याह ! मेवाड़का ब्याह कैसा ?

राणा—अबकी ध्वंसके साथ मेवाड़का ब्याह होगा।

रानी—इसका क्या अर्थ ?

राणा—बड़ा बढ़िया अर्थ है। अबकी भाई भाईकी लड़ाई है। खूब आनन्द मनाओ। अबकी ब्याह होगा !—विनाशके साथ !—ध्वंसके साथ !

[राणा जाते हैं।]

रानी—अब तो ये बिलकुल ही पागल हो गये। मैं पहलेहीसे समझती थी। चलो घरभर पागल हो गया ! अब मैं क्या करूँ ?

[मानसी आती है।]

मानसी—माँ, पिताजीको क्या हो गया है ? वे पागलोंकी तरह इधरसे उधर घूमते फिरते हैं ! उन्हें क्या हो गया है ?

रानी—और होन क्या है ? वे पागल हो गये हैं। जाऊँ, देखूँ।

[रानी जाती है।]

मानसी—यह महाबतखॉ राजपूत है ! यह गजसिंह भी राजपूत है ! इतनी ईर्ष्या ! इतना द्वेष ! हायरे अधम जाति ! तेरा पतन न होगा तो और किसका होगा ? जब भाई भाईमे ही लडाई हो तो फिर कौन बचा सकता है !

चौथा दृश्य ।

स्थान--मेवाडमें एक गावका रास्ता । **समय**-सन्ध्या ।

[सत्यवती ओर अरुण चले जा रहे हैं ।]

सत्यवती—अरुण !

अरुण—क्यो मॉ !

सत्य०—चलनेमे कष्ट होता है ?

अरुण—नहीं मॉं ।

सत्य०—आज हम लोग इसी गॉवमे ठहरेंगे ।

अरुण—क्यों, यहॉ क्या काम है ?

सत्य०—गॉववालोंसे चलनेके लिए कहना है ।

अरुण—कहॉ ?

सत्य०—लडाई पर । मेवाडका वीरकुल नष्ट हो गया । अब नये वीरकुलकी सृष्टि करनी पडेगी । पूजाका नया प्रबध करना पडेगा । चलो, चले । सन्ध्या होती जाती है । (दोनों जाते हे ।)

[कइ देहाती आते है ।]

पहला देहाती—ऐसा बढिया देश, अबकी बार गया समझो ।

दूसरा देहाती—अबकी बार स्वय महाबतखॉ आये हैं । अब रक्षा नहीं हो सकती ।

तीसरा देहाती—महाबतखॉ क्या खूब लडना जानते हैं ?

दूसरा देहाती—ओह ! क्या पूछना है ।

चौथा देहाती—हैं: ! उन्होंने लड़ना कब सीख लिया ? मैंने तो अभी उन्हें उस दिन पैदा होते देखा था।

दूसरा देहाती—इस तरह तो सभीको कोई न कोई पैदा होते देखता है। पर इससे क्या यह सिद्ध हो जाता है कि वह लड़ना नहीं जानता ?

चौथा देहाती—भइया, तुम तो बड़े भारी न्यायशास्त्री हो !

पहला देहाती—देखो, मालूम होता है, उस गाँवमें आग लगी है।

सब—कहाँ ?

पहला दे०—वह देखो, धुआँ उठ रहा है।

चौथा दे०—वह ? वह तो बादल है।

दूसरा दे०—क्या बादल जमीनसे उठ कर ऊपर जाता है ? बादल भी कहीं घूमता है ? वह देखो, वह घूम रहा है।

चौथा दे०—तो, धूल उड़ती होगी।

दूसरा दे०—हाँ क्यों नहीं ! धूलका रंग काला होता है न !

चौथा दे०—अरे यार, तुम तो बड़े भारी हुज्जती दिखाई देते हो।

पहला दे०—और, यह गाँववालोंकी चिल्लाहट नहीं सुनाई पड़ती ?

बाकी सब—हाँ हाँ।

चौथा दे०—अरे, लोग गाते होंगे। नहीं तो गधा रेंकता होगा।

दूसरा दे०—दोनोंकी आवाज एक ही तरहकी होती है न ! क्यों पँड़िजी !

पहला दे०— यह देखो, बहुतसे गाँववाले रोते चिल्लाते इसी तरफ आ रहे हैं।

तीसरा दे०—और उनके पीछे पीछे सिपाही गोलियाँ चलाते आ रहे हैं।

नैपथ्यमें—दोहाई है ! दोहाई है साहब ! मारो मत ! मारो मत !

पहला दे०—हाय हाय ! बेचारे सब—

[कल्याणी और अजयसिंह आते हैं ।]

अजय०—(देहातियोंसे) भइया, तुम लोग खड़े क्या देख रहे हो ! जरा इन लोगोंको बचाओ ।

सब—भला हम लोग क्या करेंगे ?

अजय—तब क्या तुम चुपचाप खड़े खड़े यह अत्याचार देखा करोगे ?

चौथा दे०—और नहीं तो क्या उनके पीछे प्राण देंगे ? चलो भइया, भागें ! वे इसी ओर आ रहे हैं ।

कल्याणी—क्या भागनेसे बच जाओगे ? कभी नहीं । तुम लोगोंकी भी पारी आती है । कोई भी न बचेगा । तुम लोगोंके भी घर जलाये जायँगे ।

पहला दे०—उहँ, जब जलाये जायँगे तब देखा जायगा । आयु रहते कभी कोई मरता है ? लो, ये लोग तो आ गये । भागो, भागो ।

[अजयसिंह और कल्याणीके सिवा सब लोग भाग जाते है ।]

अजय०—यह चिल्लाहट तो और भी पास आती जाती है । यह बन्दूकका शब्द ! कल्याणी ! तुम जरा एक ओर हट कर खड़ी हो जाओ । मैं इन लोगोंको बचाऊँगा ।

कल्याणी—हाँ भइया, जहाँ तक हो सके इन लोगोंको बचाओ ।

[कल्याणी वहाँसे थोड़ी दूर पर चली जाती है ।]

अजय०—कल्याणी ! यह तो मैं नहीं कह सकता कि मैं इन लोगोंको बचा सकूँगा या नहीं; पर हाँ इनके लिए अपने प्राण अवश्य दे सकूँगा । मैंने मानसीसे जो महामन्त्र सीखा है, आज उसीका साधन करूँगा । लो, ये आ रहे हैं । (म्यानसे तलवार निकाल लेते हैं ।)

[हाँफते हुए कई देहाती आते हैं । उनके पीछे पीछे नंगी तलवारें लिये हुए बहुतसे मुगल-सिपाही आते हैं ।]

देहाती—महाराज! हमें बचाइए! हमें बचाइए! (अजयसिंहके पैरों पर गिर पड़ते हैं ।)

अजय०—(सिपाहियोंसे) खबरदार !

पहला सिपाही—चुप रहो। (तलवार उठाता है ।)

(अजयसिंह उसे तलवारसे मारकर जमीन पर गिरा देते हैं । बाकीके सिपाही अजयसिंहके साथ लड़ने लगते है। एक एक करके सब मुगल-सिपाही जमीन पर गिर जाते हैं । इसके बाद थोड़ेसे सिपाही और आ जाते हैं ।)

अजय०—कल्याणी ! अब रक्षा नहीं हो सकती, भागो ।

कल्याणी—भइया, तुम यहाँ प्राण दोगे और मैं भाग जाऊँगी ?

(कल्याणी आगे बढ़ आती है । उसी समय एक मुगल-सिपाहीकी गोली लगनेसे अजयसिंह गिर पडते हैं ।)

कल्याणी—(दौड़कर) भइया ! भइया !

दूसरा सि०—यह कौन है ? पकड़ो इसे !

तीसरा सि०—नहीं जी । सिपहसालार साहबका हुक्म है कि औरतों पर किसी तरहका जुल्म न किया जाय।

अजय०—कल्याणी ! मैं मरता हूँ ! ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे ।

(अजयसिंह छटपटाकर मर जाते हैं ।)

कल्याणी—(रोती हुई) भइया! भइया! कहाँ चले ।

[अजयसिंहकी लाश पर कल्याणी गिर पड़ती है ।]

चौथा सि०—और कहाँ जायँगे ? वहीं, जहाँ एक दिन सबको जाना है ।

कल्याणी—(शान्त होकर) नहीं, मैं शोक नहीं करूँगी—क्षत्र-वीर! तुमने अपना कर्त्तव्य किया है । तुमने दीनों और असहायोंकी

रक्षामें अपने प्राण दिये हैं। और ये लोग? ये सब शैतानके दूत हैं! लहूके प्यासे हिंसक पशु हैं। ये बिना किसी अपराधके दूसरोंके घर जलाते हैं, बेचारे देहातियोंकी हत्या करते हैं।–इन लोगोंके लिए हे भगवन्! नरकमें भी स्थान नहीं मिले।

पहला सि०—इसमें हम लोगोंका क्या कुसूर है? हम लोग तो अपने सिपाहसालारके हुक्मसे लोगोंके घर जलाते हैं और उनकी जान लेते हैं।

कल्याणी—तुम लोगोंका सिपहसालार कौन है?

दूसरा सि०—तुम्हें नहीं मालूम? महाबतखाँ साहब।

तीसरा सि०—चलो, जाने भी दो।

कल्याणी—क्या उन्हींका यह हुक्म है? ऐसा कभी नहीं हो सकता।

चौथा सि०—चलो, चलो।

कल्याणी—ठहरो मैं भी चलूँगी।

पहला सि०—तुम कहाँ चलोगी?

कल्याणी—तुम्हारे सिपहसालार साहबके पास।

दूसरा सि०—तुम्हें वहाँ ले चलके क्या हम लोग—

तीसरा सि०—और नहीं तो क्या हम लोग–आफतमें पड़ेंगे?

चौथा सि०—अरे वह खुद ही चलना चाहती है तो क्या हर्ज है? ले चलो।

पहला सि०—अच्छा चलो।

कल्याणी—चलो।

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयपुरकी राजसभा । **समय**—प्रभात ।

[राणा, गोविन्दसिंह और सामन्त लोग ।]

रघुवर०—महाराज ! जहाँ तक हो सका, हम लोग लड़े । पर अब और लड़ना असंभव है ।

राणा—नहीं रघुबर ! हम अवश्य लड़ेंगे । हम कोई बाधा न मानेंगे,—एक भी न सुनेंगे । सेना तैयार है ?

केशव—महाराज ! सेना है ही कहाँ ? सारे मेवाड़मेंसे पाँच हजार सेना भी संग्रह की जा सकेगी या नहीं, इसमें सन्देह है । इतनी सेना लेकर क्या एक लाख सेनाके साथ लड़ना सम्भव है ?

राणा—असम्भव कुछ भी नहीं है । हमारी यह पाँच हजार सेना पाँच लाख सेनाके बराबर है ।

अजयसिंह—महाराज ! इस समय मुगलोंके साथ सन्धि कर लेना ही उत्तम है ।

राणा—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता । जब हम सन्धि करना चाहते थे, तब किसीने हमारी बात न सुनी । उस समय मुगल स्वयं सन्धि करना चाहते थे । पर अब वह समय निकल गया । अब हम प्रार्थना करके मुगलोंके साथ सन्धि नहीं कर सकते ।

केशव—किन्तु—

राणा—अब इस सम्बन्धमें कोई कुछ न कहो । अब कोई उपाय नहीं है । अब लड़ना और मरना ही पड़ेगा । क्यों गोविन्दसिंहजी ?

गोविन्द०—हाँ महाराज ! हम प्राण देंगे, पर मान न देंगे ।

राणा—आप ठीक कहते हैं गोविन्दसिंहजी ! प्राण देंगे, पर मान न देंगे ।

रघुवर—महाराज !—

राणा—नहीं अब हम कुछ भी नहीं सुनना चाहते। हम खाली युद्ध करना चाहते हैं—युद्ध। सेना सुसज्जित करो। मेवाड़की लाल ध्वजा उड़ाओ। रण-भेरी बजाओ। जाओ, तैयार हो जाओ।

[राणा अमरसिंहके अतिरिक्त और सब लोग चले जाते हैं।]

राणा—मेवाड़—सुन्दर मेवाड़! आज हम तुम्हारा यह कैसा सौन्दर्य्य देख रहे हैं! इसे तो पहले और कभी नहीं देखा था। तुम्हारे वस्त्र फट गये हैं, सारे शरीरमें धूल लगी है, बाल इधर उधर बिखरे हुए हैं। इसी वेषमें वे तुम्हें वध्य-भूमिकी ओर ले जा रहे हैं। माता! यह तुम्हारा कैसा सौन्दर्य है! आज इतने दिनों बाद हमने तुम्हें पहचाना है। इतने दिनों तक तुम्हारे सौभाग्य—सूर्य्यकी किरणोंने तुम्हें ढँक रक्खा था; पर अब वह सूर्य्य ढल गया है। इसी लिए आज हम तुम्हारे उसी आकाशमें यह कैसा अपूर्व और अद्भुत प्रकाश निकलता हुआ देख रहे हैं! यह कैसी ज्योति है! कैसी नीलिमा है! कैसी नीरव महिमा है!

छट्ठा दृश्य।

स्थान—महाबतखाँका डेरा। **समय**—प्रभात।

[महाबतखाँ और गजसिंह खड़े हुए हैं।]

गज०—राणा अपनी फौजको साथ लेकर लड़ने आये थे?

महाबत०—हाँ महाराज! पर वे लौटे अकेले ही। उनके पाँच हजार सिपाहियोंमेंसे चार हजार सिपाही मैदाने-जंगमें काम आये।

गज०—सिर्फ पाँच हजार फौज लेकर एक लाख फौजसे लड़ने आये थे? गजबकी हिम्मत है!

महाबत—हाँ, हिम्मत तो है ही। लेकिन महाराज ! आज मुझे एक बातका बहुत ही फक्र हो रहा है।

गज०—हाँ खाँ साहब ! फक्र करनेकी बात ही है।

महाबत०—लेकिन आप शायद इस बातका खयाल भी नहीं कर सकते कि मुझे फक्र क्यों हो रहा है। क्या आप उसकी वजह जानते हैं ?

गज०—फरमाइए।

महाबत०—मुझे इस लिए फक्र हो रहा है कि मैं मुसल्मान होने पर भी इसी राजपूत कौमका हूँ और मैं इन्हीं अमरसिंहका भाई हूँ। जो शख्स पाँच हजार सिपाहियोंको साथ लेकर हमारी एक लाख फौजके साथ लड़ने आया था, वह गोया अपनी जान ही देने आया था। अपने मुल्कके लिए ऐसी जान्-निसारी, ऐसी बे-खौफी और ऐसी हिम्मतका काम राजपूत ही कर सकते हैं। और मैं भी उन्हीं राजपूतोंमेंसे हूँ।

गज०—बेशक, बेशक।

महाबत०—और आप भी तो वही राजपूत हैं; आप भी फक्र करें। लेकिन चूँकि आप गिर गये हैं इसलिए शर्मसे सिर भी झुकावें। आप गौर करें कि आप क्या हो सकते थे और क्या हो गये। मेरी बात छोड़ दीजिए। मेरे लिए कमसे कम इतनी जगह तो आँसू पोंछनेके लिए है कि मैं अब राजपूत नहीं हूँ। मैं किसी जमानेमें राजपूत था और आप अब भी राजपूत हैं।

गज०—लड़ाईमें राणा मारे नहीं गये, और कैद भी नहीं हुए ?

महाबत०—नहीं, मैंने हुक्म दे दिया था कि वे मारे या कैद न किये जायँ। ऐसा दुश्मन दुनियाके फक्रकी चीज है। मैं वह फक्र तोड़ना नहीं चाहता।

गज०—अच्छा, अब मुझे इजाजत हो।

महाबत०—हाँ हाँ, आप तशरीफ ले जा सकते हैं।

[गजसिंह जाते हैं।]

महाबत०—वे सामने जलते हुए गाँव दिखाई देते हैं। गाँववालोंकी रोने चिल्लानेकी आवाजें सुनाई पड़ती हैं। हिन्दुओ ! तुम लोग अपने मजहबका बड़प्पन ले कर मरो। आज मैंने तुम्हारी सारी शेखी किरकिरी कर दी !—सारा दंभ, सारा घमण्ड और सारा वैर पीस दिया ! तुम्हारी—

[चार सिपाहियोंके साथ कल्याणी आती है।]

महाबत०—यह कौन है ?

पहला सि०—खुदावन्द ! हम लोग इसे बिलकुल नहीं जानते। यह रास्तेमें मिली थी और खुद ही हम लोगोंके साथ यहाँ तक चली आई है।

महाबत०—(कल्याणीसे) तुम कौन हो ?

कल्याणी—मेरा परिचय पाकर आपको कोई लाभ नहीं होगा।

महाबत०—तुम क्या चाहती हो ?

कल्याणी—मैं आपके पास एक बातका न्याय करानेके लिए आई हूँ।

महाबत०—किस बातका न्याय ?

कल्याणी—आपके इन सिपाहियोंने मेरे निर्दोष भाईकी हत्या की है।

महाबत०—तुम्हारे भाईकी हत्या की है ? किस प्रकार ? सिपाहियो !

पहला सिपा०—खुदावन्द ! हम लोग गाँववालोंको कत्ल कर रहे थे। इस औरतका भाई उनकी तरफसे हम लोगोंके साथ लड़ने लगा और उसी लड़ाईमें मारा गया।

महाबत०—(कल्याणीसे) क्या यह बात ठीक है ?

कल्याणी—हाँ ठीक है । आपके सिपाही बचारे गाँववालोंकी हत्या कर रहे थे । मेरे भाई उन्हें बचाने गये, तो इन लोगोंने उन्हें भी मार डाला ।

महाबत०—तब तो वे लड़ाईमें मारे गये !

कल्याणी—ऐसा ही सही । इन लोगोंने उन्हें लड़ाईमें मार डाला।

महाबत०—तब देवी ! इसमें इन लोगोंका अपराध नहीं है । मैंने इन लोगोंको ऐसी ही आज्ञा दी थी । सिपाहियो ! तुम लोग बाहर जाओ।

(सिपाही वहाँसे चले जाते हैं ।)

कल्याणी—क्या आपने बेचारे निरपराध गाँववालोंकी हत्या करनेकी आज्ञा दी थी ?

महाबत०—हाँ, मैंने हत्या करनेकी आज्ञा दी थी ।

कल्याणी—और गाँव जलानेकी भी ?

महाबत०—हाँ ।

कल्याणी—मुझे विश्वास नहीं होता । आप इतने निठुर नहीं हो सकते ।

महाबत०—मेरे सम्बन्धमें तुम्हारी ऐसी उच्च धारणाका क्या कारण है ?

कल्याणी—मेरे स्वामी ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते ।

महाबत०—तुम्हारे स्वामी !

कल्याणी—हाँ ! मेरे स्वामी । प्रभो ! अच्छी तरह देखिए, आप मुझे पहचान सकते हैं या नहीं ! मैं आपकी परित्यक्त हिन्दू स्त्री कल्याणी हूँ ।

महाबत०—कल्याणी ! कल्याणी ! तब क्या इन लोगोंने तुम्हारे भाई अजयसिंहकी हत्या की है ?

कल्याणी—हाँ! मैंने जिस दिन आपका ध्यान करके, आपके प्रेमको अपने जीवनका ध्रुव तारा बनाके, अपनी छोटीसी नावको इस अनन्त संसार-समुद्रमें छोड़ा था, उस दिन मेरे भाई अजय बहुत ही आनन्दपूर्वक अपनी इच्छासे मेरी रक्षा करनेके लिए इस दुःखमें मेरे साथी हो गये थे। रास्तेमें आपके कुछ दुष्ट सिपाहियोंसे एक बार मुझे बचाते समय वे बुरी तरह घायल होगये थे। मैंने बहुत दिनों तक एक टूटी फूटी कुटीमें रहकर उनकी सेवा की थी और पासके गाँवोंसे भीख माँग माँग कर उन्हें खिलाया और बचाया था। आपने मेरे ऐसे भाईके प्राण ले लिए। नाथ! अब मैं भी क्यों बची रहूँ? मुझे भी बध कर डालिए।

महाबत०—नहीं नहीं, तुम मुझे क्षमा करो।

कल्याणी—क्या इतने गाँववालोंकी हत्या आपकी ही आज्ञासे हुई है?

महाबत०—हाँ, मेरी ही आज्ञासे हुई है। मैंने अपने सिपाहियोंको राजपूत-जातिका नाश करनेकी आज्ञा दी थी।

कल्याणी—हे ईश्वर! तुमने यह क्या किया? यही मेरे आराध्य देवता हैं! इन्हीं घातकका ध्यान करके मैं संन्यासिनी हुई थी! क्या मेरे लिए मृत्यु भी नहीं थी! भगवन्! मैं एक ही दिन एक ही साथ स्वामी और भाई दोनोंको खो बैठी! आज मेरे समान अभागिनी कौन होगी! हाय! (मुह ढँक लेती है।)

महाबत०—लेकिन तुम जानती हो कि मैंने क्यों—

कल्याणी—नहीं प्रभो! और मैं यह जानना भी नहीं चाहती। मेरा मोह भंग हो गया। मैं इतने दिनों तक आपकी पूजा करती थी, पर आजसे मैं आपको परम शत्रु समझती हूँ। मैं मुगलोंको

उतना शत्रु नहीं समझती जितना आपको समझती हूँ। मुगल हमारे कोई नहीं हैं। उनका धर्म्म उन्हें इस बातकी शिक्षा देता है कि वे काफिरोंका वध करें। लेकिन आप तो इस देशकी सन्तान हैं, आपकी नसोंमें तो विशुद्ध राजपूत-रक्त है। आप भी तुच्छ धनके लोभसे और विद्वेषसे, अपनी जातिका नाश करने लग गये! नाथ! मैं क्या कहूँ! आप मुगलोंसे भी बढ़ गये। वे केवल मेवाड़ जीतना चाहते हैं, बेचारे गरीब देहातियोंके घर फूँकना नहीं चाहते। पर आप उनकी कमी भी पूरी कर रहे है। आपने उनके धर्म्मकी जूठन खाकर, अपने इन हत्यारे सैनिकोंको—इन घृणित मांस-लोलुप नर-कुक्करोंको—बेचारे गाँववालों पर छोड़ दिया है। आपने मेवाड़को श्मशान बना दिया है। निर्दोष मनुष्योंके हाहाकारसे सारा आकाश गूँज रहा है। पर मुगलोंकी ऐसी इच्छा कभी नहीं थी। हे ईश्वर! क्या ऐसे देश-द्रोहियोंके लिए तुम्हारे यहाँ कोई दण्ड नहीं है? हाय! अब भी इन पर आकाशसे वज्र क्यों नहीं गिरता!

महाबत०— कल्याणी! मैं इस युद्धमें केवल तुम्हारे कारण प्रवृत्त हुआ हूँ।

कल्याणी—मेरे कारण? झूठ।

महाबत०—नहीं, झूठ नहीं सच। मैंने जिस दिन सुना कि तुम्हारे पिताने मुसल्मानोंके साथ घृणा करनेके कारण तुम्हें घरसे निकाल दिया, उसी दिन, उसी समय मैंने मेवाड़के विरुद्ध अस्त्र धारण किया।

कल्याणी—यदि यह बात मान भी ली जाय, तो भी आप धर्म्मके किस सिद्धान्तके अनुसार एक मनुष्यके अपराधके कारण सारी जातिका नाश करनेके लिए तुल गये?

महाबत०—इसमें क्या तुम्हें आश्चर्य्य होता है! क्या एक रावणके पापके कारण सारी लंका ध्वंस नहीं हुई? और फिर मुसल्मानोंके

साथ यह विद्वेष अकेले तुम्हारे पिताका ही तो नहीं है। तुम्हारे पिताने तो समस्त मुसलमानोके प्रति जो समस्त हिन्दुओका विद्वेष है, उसे प्रकट किया था। मै हिन्दुओके उसी जातिगत विद्वेषका बदला लेने आया हूँ।

कल्याणी—लेकिन मुगल-सेनापति! इसका बदला यदि कोई लेना चाहे तो वह जातिका मुसलमान ही ले सकता है। आप जब स्वय मुसलमान हुए थे, तब हिन्दुओका यही मुसलमान-विद्वेष जान कर मुसलमान हुए थे। नाथ! आपने अपनी यह दशा आप ही बनाई है। आप वृथा क्यो यह समझकर अपने मनको प्रबोध देते है कि आप एक अन्यायका प्रतिकार करने बैठे है? आपमे जो कुछ मुसलमान-पन है, वह आपसे यह काम नहीं करा रहा है; बल्कि आपमे जो अहम्मति-महाबतखाँपन-है वही आपसे यह काम करा रहा है।

महाबत०—(कुछ कुछ स्वगत) है! क्या यह बात ठीक है!

कल्याणी—आप उसी व्यक्तिगत द्वेषके कारण मेवाडका नाश करने पर उतारू हुए है। यही आपका धर्म्म है! यही आपकी शूरता है! यही आपका मनुष्यत्व है! हे ईश्वर! यह तुमने क्या किया! मैं इतने दिनो तक हवामे महल बना रही थी, आज तुमने उसे मिट्टीमे मिला दिया।

महाबत०—कल्याणी—

कल्याणी—बस बस! अब मेरा मोह भग हो गया! मैने समझा था कि आप मेरे स्वामी है, मै आपकी स्त्री हूँ। इसी लिए मैंने एक दिन बडे अभिमानसे कहा था-" हम लोगोको कौन अलग कर सकता है?" लेकिन नहीं, अब मै देखती हूँ कि आपके और मेरे बीचमें

एक बड़ा भारी समुद्र है। हम दोनोंके बीचमें मेरे भाईका मृत-शरीर पड़ा हुआ है; और उससे भी बढ़कर हम दोनोंके बीचमें मेरे स्वदे-शके रक्तकी नदी बह रही है। निठुर, देशद्रोही, लहूके प्यासे, हत्यारे! ऊः!—हे ईश्वर! हे विधाता! ऐसे नीच, हिंस्र, अपने भाइयोंकी हत्या करनेवाले, और मुट्ठीभर जूठनके भिखारियोका बिकट अट्टहास सुनकर कही अन्तमें तुम परसे भी मेरा विश्वास न उठ जाय!

[कल्याणी चली जाती है ।]

पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान--उदयपुरका राजप्रासाद। **समय**--रात।

[मानसी अकेली गाती है।]

सोहनी।

प्यारे कहि न सकी कछु हाय
कितनी मैं चाहति तोहि पीतम
सकी न सोउ बताय ॥

लागी कहन, गरौ भरि आयो
मौन रही पछताय।
मनकी बात रही है मनमें
करौं सु कौन उपाय ॥

मुँह नहिं खुल्यो फटति जो छाती
तौ मैं देति दिखाय।
तेरी मोहन मूरत मेरे
हियमें रही समाय ॥

[राणा आते हैं ।]

मानसी—पिताजी ! आप युद्धसे लौट आये ?

राणा—हाँ बेटी !

मानसी—क्यों ? क्यों ? क्या हुआ पिताजी ?

राणा—चुप रहो, चुप रहो । बोलो मत । मैंने एक बड़ी ही अद्भुत, अतुल और आश्चर्य्य-जनक बात देखी है ।

मानसी—क्या देखा ? युद्ध—

राणा—नहीं मानसी ! इस बार युद्ध तो हुआ ही नहीं । युद्ध-क्षेत्रमें केवल एक आग बरसने लगी और उसीमें हमारी सारी सेना जल गई ।

मानसी—कैसे ?

राणा—हम कुछ भी न समझ सके । न जाने वह क्या था ! मानो वह इस जगतका कुछ नहीं था । ऐसा माल्रूम होता था कि उल्कावृष्टि हो रही है ! अभिशापका एक भयंकर पूर आ रहा है ! हमने क्षण भरके लिए आँखें बन्द कर लीं । हमारे शरीर परसे होकर मानो हृत्कम्पकी बिजलीसी निकल गई, एक बार मस्तिष्क चकरा गया । हम कुछ भी समझ न सके । जब आँखें खुलीं तो माल्रूम हुआ कि मानों हम सो कर उठे हैं । रण-क्षेत्रमें हम अकेले ही रह गये, और कोई दिखाई न पड़ा ! चारों ओर लाशोंके ढेर लगे हुए थे । ओह ! वह कैसा दृश्य था !

मानसी—पिताजी ! जान पड़ता है, आप कुछ उत्तेजित हो गये हैं । बैठ जाइए, मैं आपकी कुछ सेवा करूँ ।

राणा—हम उसी श्मशानमें अकेले घूमने लगे, लेकिन किसीने हम पर वार नहीं किया ।

मानसी—क्या इस युद्धमें आपने अपनी हार मान ली ?

राणा—हमारे हार मानने न माननेसे कुछ होता जाता नहीं। युद्ध कोई तर्क नहीं है जिसमें हार न माननेसे ही जीत हो जाय। यह तो स्थूल, कठिन और प्रत्यक्ष सत्य है—बहुत ही प्रत्यक्ष सत्य है। परन्तु न जाने क्यों हमें उन लोगोंने मारा नहीं! हम उस महा श्मशानमें 'महावतखाँ—महावतखाँ' 'गजसिंह—गजसिंह' चिल्लाते फिरे, पर कोई हमारे पास न आया। तुम बतला सकती हो कि क्यों कोई हमारे पास नहीं आया मानसी ?

मानसी—पिताजी! आप क्षुब्ध न हों—

राणा—हाँ, एक और बात हमारी समझमें नहीं आती। महावतखाँ युद्धमें जीत तो गये, पर तो भी न जाने क्यों वे गर्वपूर्वक उदयपुर दुर्गमें अभी तक प्रवेश नहीं कर रहे हैं! अब तो यही बाकी है कि वे आकर दुर्ग पर अधिकार कर लें।

मानसी—पिताजी! आप हार गये तो हार गये। इसमें दुःख काहेका ? युद्धमें किसी एक पक्षकी हार तो होती ही है।

राणा—बेटी, तुम ठीक कहती हो। कोई न कोई पक्ष तो हारेगा ही। तब दुःख काहे का?—नहीं मानसी, हमें भी इसका कोई दुःख नहीं है। पर उन लोगोंने आकर हमें वध क्यों नहीं किया?

[रानी आती है।]

राणा—(रानीसे) बड़ी भारी समस्या उपस्थित है। तुम कुछ बतला सकती हो?

रानी—क्या ?

राणा—हमें उन लोगोंने वध क्यों नहीं किया ?

[रानी मानसीकी ओर देखती है ।]

राणा—सुनो उस गम्भीर निशामें, उस युद्धक्षेत्रमें, उस मुरदोंके ढेरमें हम अकेले खड़े थे । वह भी कैसा दृश्य था ! तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती । ऊपर आकाशमें अनन्त निश्चल तारे,—और नीचे पृथ्वी पर अगणित मुरदे। उन दोनोंके बीचमें और कुछ भी नहीं,—केवल घोर अन्धकार। हमें ऐसा जान पड़ता था कि इस जगतसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं है । मानों हम भी मर गये हैं, और मानों हम 'जीती जागती मृत्यु' हैं। उस युद्धक्षेत्रमें हमने तलवार निकाल कर चलाई, पर वह केवल उस रातकी ठंडी हवाको ही काट कर रह गई। हमने पुकारा—'महाव्रत' पर वह ध्वनि चारों ओर व्यर्थ ढूँढ़कर लौट आई । इसके बाद (स्वर भग्न हो जाता है) हमने एक बार उस युद्ध-क्षेत्रमें चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, तब उन्हीं नक्षत्रोंके प्रकाशमें हमने देखा कि हमारा सोनेका राज्य किसी भारी भूकम्पसे बिलकुल नष्ट भ्रष्ट होकर पड़ा है । (धीमे स्वरसे) इसके उपरान्त उस महा श्मशानकी खुली हुई हवा मानों मृत सैनिकोंकी देहमुक्त आत्माओंके बोझसे भारी जान पड़ने लगी । बड़े कष्टसे हमने एक गहरी साँस ली । वह साँस भी ऊपर अकाशकी ओर न जाकर अपने बोझेके कारण जमीन पर ही गिर पड़ी । हम समझते हैं, यदि उस समय वहाँ उतना अन्धकार न होता तो वह ढूँढ़नेसे अवश्य मिल जाती ।

रानी—जो होना था सो हो गया। अब सोच करनेसे क्या होगा? मैंने तो पहले ही कह दिया था ।

राणा—हाँ, तुमने ठीक कहा था । मेवाड़ मर गया और हम खड़े हुए देखते रहे । हम उसे कन्धेपर उठाकर यहाँ ले आये हैं । आओ, देखोगी !

दूसरा दृश्य ।

स्थान—मेवाड़के अन्तःपुरके अन्दरका एक छोटासा रास्ता ।

समय—रात ।

[दो दासियाँ बातचीत करती हुई आती हैं ।]

पहली दासी—हाय ! बूढ़े गोविन्दसिंहजीके दुःखका पार नहीं रहा । बेचारोंके एक ही लड़का था ।

दूसरी दासी—जो हो, पर चारणी रानी लाशको गोविन्दसिंहके घर तक क्यों ले आई, सो वे ही जानें ।

पहली दासी—उनके सभी काम ऐसे बेढब होते हैं । मानों उन्हें और कोई काम ही नहीं था । क्या वहाँ बहुतसे लोग जुड़े हैं ?

दूसरी दासी—हाँ, सारा आँगन भर गया है । गोविन्दसिंह घरमें नहीं है । चारणी रानीके लड़के अरुणसिंह उन्हें बुलाने गये हैं । मैंने देखा कि उसी आँगनमें लाशके पास रानी अकेली खड़ी हैं । और सब लोग दूर थे ।

पहली दासी—अँधेरेमें ?

दूसरी दासी—अँधेरा ही था, दूर एक कोठरीमें एक दीआ अवश्य टिमटिमा रहा था । यह कौन ?

पहली दा०—कहाँ ?

दूसरी दा०—देखती नहीं हो ? वह ।

पहली दा०—वे तो राजकुमारी हैं । देखो न कैसी दशा है ! आँखें ऊपर चढ़ गई हैं । आँचल गिरकर मिट्टीमें घसिटता जाता है । दोनों हाथोंकी मुट्ठियाँ बँधी हैं ।

दूसरी दा०—लो, वे तो इधर ही आरही हैं । चलो, हम लोग चलें ।

[दोनों एक ओर चली जाती हैं । दूसरी ओरसे मानसी आती है ।]

मानसी—गये ! अजय भी सदाके लिए गये ! मुझसे न तो मिले और न कुछ कहा ही, और चले गये! पर क्या यह ठीक है ? ओह ! मेरा सिर घूमता है । आँखोंके सामने पीले पीले बिम्ब पृथिवीसे उठते हैं और ऊपर जाकर नष्ट हो जाते हैं । शरीरमेंसे कोई तरल ज्वाला निकल रही है । सिरके ऊपरसे आकाश हट गया है, पैरोंके नीचेसे पृथ्वी निकल गई है । मैं कहाँ हूँ ! हाय ! (थोड़ी देर तक चुप रहनेके उपरान्त धीरे धीरे) मैं बड़ी ही निठुर हूँ । कभी मुँहसे बात भी नहीं की । उस दिन जब अजयने मेरी कणमात्र अनुकम्पाका भिखारी बन कर दीन नेत्रोंसे मेरी ओर देखा था, जब वे केवल एक बार मेरे करुण-दृष्टिसे देखनेके लिए मरे जा रहे थे, तब भी मैं उनसे न बोली। इसीसे मेरे अजय रूठ करके चले गये हैं । मेरे उसी अभिमानको चूर्ण करके, पैरोंसे रौंध करके वे चले गये हैं । अजय ! आज तुम्हारे पैरों-पर लोटनेको जी चाहता है, आज तुम्हें अपना हृदय चीरकर दिख-लानेकी इच्छा होती है । पर हाय! अब समय नहीं है !

[मानसी चली जाती है ।]

तीसरा दृश्य ।

स्थान—गोविन्दसिंहके घरका आँगन ।

समय—रात ।

[खूब तेज हवा चल रही है । अजयसिंहकी लाश पड़ी है । पास ही सत्यवती और चार उठानेवाले खड़े हैं । गोविन्दसिंह टक लगाकर लाशकी ओर देख रहे हैं ।]

गोविन्द०—यही मेरे पुत्र अजयसिंहका मृत शरीर है ! सत्यवती, यह तुम्हें कहाँ मिला ?

सत्यवती—रास्तेके किनारे ।

गोविन्द०—इसकी मृत्यु किस प्रकार हुई ?

सत्य०—जो लोग आसपास खड़े हुए थे उनसे मालूम हुआ कि महाबतखाँके सिपाही बेचारे गाँववालोंकी हत्या कर रहे थे। इसलिए अजयसिंह उनको बचानेके लिए गये और वहीं मारे गये। और कल्याणीको सिपाही पकड़कर ले गये ।

गोविन्द०—बेटा अजय ! तुमने मुझे क्षमा माँगनेका भी अवसर न दिया ! मैं क्रोधसे अन्धा हो गया था, इसीसे तुम घर छोड़ कर चले गये और मैंने तुमसे कुछ भी न कहा। हाय मैंने तुम्हें बुला क्यों न लिया ! जाने ही क्यों दिया ! हाय, बेटा अजय ! प्राणोंसे भी प्यारे अजय ! तुमने मुझे क्षमा माँगनेका भी अवकाश न दिया! इतना अभिमान ! इतना रूठना !—यह तुम्हारा बूढ़ा बाप था !—अजय! अजय !—

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, इसमें दु:ख काहेका ? अजयने तो दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं ।

गोविन्द०—हाँ सत्यवती, तुम सत्य कहती हो। अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं—असहायोंकी सहायता करते हुए प्राण त्यागे हैं, तब फिर दु:ख काहेका ? जाओ, अच्छी तरह दाहकर्म्म करो ।

[गोविन्दसिंह लाशका मुहँ ढँकते हैं। उठानेवाले अजयसिंहका शव उठाना चाहते हैं।]

गोविन्द०—ठहरो, मुझे एक बार और देख लेने दो। हाय मेरे सर्वस्व ! बूढ़ेके बल ! अन्धेकी लकड़ी ! मेरे प्यारे बेटे ! एक बार—नहीं नहीं दु:ख काहेका ? सत्यवती तुम ठीक कहती हो, अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं। मेवाड़भूमि ! राक्षसी ! इतने लोगोंके प्राण लेकर भी तेरा पेट

न भरा ! तू तो जानेके लिए तैयार बैठी है, पर जान पड़ता है सबको खाये बिना न जायगी ! हाय ! मेरा सोनेका संसार माटी हो गया— नहीं! नहीं! कौन कहता है कि मेरा अजय मर गया! वह मरा नहीं है। देखो, मेरी ओर देख रहा है ! वह तो अभी जीता है! अजय ! अजय !

[गोविन्दसिंह अजयके मृत शरीरकी ओर बढ़ते हैं। सत्यवती बीचमें आकर खड़ी हो जाती है ।]

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, शोकसे पागल न हो जाओ। तुम्हारा पुत्र अब इस संसारमें नहीं है ।

गोविन्द०—नहीं है! पुत्र नहीं है! ठीक कहती हो, पुत्र नहीं है! मैं भूलता हूँ!—अजय! अजय! मेरे सर्वस्व, अजय! (मुँह ढँक लेते हैं ।)

सत्य०—गोविंदसिंहजी, तुम वीर हो। पुत्र-शोकसे इतना अधीर होना तुम्हें शोभा नहीं देता ।

गोविन्द०—क्या कहा सत्यवती, जरा और जोरसे बोलो। मुझे सुनाई नहीं पड़ता। मेरे भीतर भयंकर आँधी चल रही है । उसके मारे कुछ सुनाई नहीं पड़ता । ओ हो हो हो (अपनी छाती पकड़ लेते हैं ।)

[कल्याणी आती है ।]

कल्याणी—पिताजी ! पिताजी !

गोविन्द०—कौन बुलाता है? कल्याणी? सर्वनाशिनी, देख अपनी करतूत! राक्षसी! मेरे अजयको तूने ही खाया है। दे, अब लाके मुझे दे।

कल्याणी—हाय, भइया ! भइया !

[अजयसिंहके मृत शरीरसे चिपट जाती है ।]

गोविन्द०—चल, दूर हट! मेरे अजयको मत छू! हट जा, डाइन!

[कल्याणीका हाथ पकड़ कर झटकार देते हैं ।]

कल्याणी—(उठकर) पिताजी, मैं सचमुच ही डाइन हूँ। मुझे मार डालो ! मेरा नाम कल्याणी किसने रक्खा था ? पिताजी, मैं आपके घरमें अकल्याणकी शिखा हूँ,—मेवाड़के लिए धूमकेतु हूँ,—पृथ्वीका सर्वनाश करनेवाली हूँ। मुझे मार डालो। इस सर्वनाशिनीको संसारसे दूर कर दो। बस फिर आपको सब कुछ मिल जायगा। मुझे मार डालो ! मार डालो !—

[गोविन्दसिंहके सामने सिर झुकाकर बैठ जाती है।]

गोविन्द०—मेरे हृदयमें यह क्या हो रहा है ! यह नरककी दाह है—पिशाचका नृत्य है ! अब तो नहीं सहा जाता ! हे जगदीश ! अब नहीं सहा जाता !

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, दुःखसे अधीर मत होओ। अपने वीर पुत्रका दाह-कर्म्म गौरवसहित करो। तुम्हारे पुत्रने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं।

गोविन्द०—सच कहती हो ! तुम सच कहती हो ! मेरे पुत्रने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं। अब मैं दुःख न करूँगा। मुझे क्षमा करो बेटी, यह तो मेरे गौरवकी बात है। पर—(रोते हुए) सत्यवती, अब मैं बहुत बूढ़ा होगया हूँ !—बहुत ही बूढ़ा होगया हूँ !

कल्याणी—पिताजी—

गोविन्द०—(काँपते हुए स्वरसे) आओ बेटी कल्याणी ! मेरी गोदमें आओ ! आओ मेरी घरसे निकाली हुई, पतिद्वारा त्यागी हुई, मातृहीना, अभागिनी कन्या ! आओ। मैंने सती साध्वीका अपमान किया था, इसी लिए ईश्वरने मुझे यह दण्ड दिया है। जाओ, तुम लोग इस मृत देहका दाह-कर्म्म करो।

[लोग मृत शरीरको उठाना चाहते ह, इतनेमें वहाँ तेजीसे राजकुमारी मानसी आती है । उसके बाल खुले हुए हैं और वस्त्र अस्तव्यस्त हैं ।]

मानसी—ठहरो, जरा मुझे भी देख लेने दो ।

सत्य०—कौन ! राजकुमारी !

मानसी—अजय ! प्रियतम ! मेरे जीवन-सर्वस्व ! मेरे स्वामी !

सत्य०–यह क्या राजकुमारी, तुम्हारे स्वामी !

मानसी—अच्छा, तब सब लोग सुन लो ! आजतक मैंने यह बात किसीसे नहीं कही थी, पर आज कहती हूँ। अजयसिंहके साथ मेरा विवाह हो गया था, पर उसका हाल कोई नहीं जानता था—यहाँ तक कि स्वयं मैं भी नहीं जानती थी । चुपचाप, बिना किसीके जाने हुए, आत्मा ही आत्मामें यह विवाह हुआ था ।—प्रियतम ! कहाँ चले ! देखो मैं आई हूँ । आज मैं तुम्हारी वह प्रगल्भा गुरु नहीं हूँ; दयामयी राजकुमारी नहीं हूँ; आज मैं तुम्हारी प्रेम-भिखारिणी एक दुर्बल स्त्री हूँ ! आज मैं दीनतम भिखारिणीसे भी दीन हूँ । अजय ! मैंने आज तक तुमसे नहीं कहा कि मैं तुम पर कितना प्रेम करती हूँ ! मैं पहले यह समझ ही नहीं सकी थी ! मुझे क्षमा करो ।

सत्य०—हाय ! राजकुमारी भी शोकसे उन्मत्त होगई है !—मानसी ! शान्त होओ । अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं––

मानसी—सच कहती हो । प्राण इसी प्रकार देने चाहिए । मेरे प्यारे शिष्य ! आज तुमने मेरे गुरुका स्थान ले लिया है ! तुम्हारे गौरवकी रश्मि परलोकको व्याप्त करके इस पृथ्वीपर आ लगी है ! यदि मरना हो तो बस इसी तरह मरना चाहिए ! वृद्ध गोविन्दसिंहजी ! आप धन्य हैं जो ऐसे पुत्रके पिता होनेका अभिमान कर सकते हैं ! धन्य

हूँ मैं, जिसके ऐसे पति हैं ! गोविन्दसिंहजी !—यह हम लोगोंके गर्व करनेका समय है, शोक करनेका नहीं।

गोविन्द०—(सूखे हुए गलेसे) राजकुमारी ! अजयने दोनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं। दुःख काहेका ? (भग्न स्वरसे) अजयने देशके लिए—(आगे उनसे बोला नहीं जाता। वे दीवार पर दाहिना हाथ टेक कर उस पर अपना सिर रख देते हैं। रोते रोते हिचकी बँध जाती है।)

मानसी—व्यर्थ ! व्यर्थ ! व्यर्थ ! भीतरसे शोकका प्रबल उछ्वास उठता है जो सारी सान्त्वनाओंको ढँक देता है ! अब तो नहीं सहा जाता।—अजय ! अजय !—

कल्याणी—यह सब क्या हो रहा है ! कुछ समझमें नहीं आता। यह स्वर्ग है या मर्त्य ! ये सब देवता हैं या मनुष्य ! यह जीवन है या मृत्यु ? मैं कौन हूँ ? ऊः—

[मूर्छित होकर गिर पड़ती है।]

सत्य०—कल्याणी ! कल्याणी !

गोविन्द०—लड़की मर रही है, मरने दो। हम सब लोग साथ ही जायँगे—पुत्र, कन्या, मैं, मेवाड़,—सब साथ ही जायँगे। पुत्र गया, कन्या गई, यह मेवाड़—मेरा प्यारा मेवाड़—सो भी डूब रहा है—डूब रहा है—वह डूबा ! चलो, मैं भी चलूँ।

[पागलोंकी तरह दौड़ते हुए निकल जाते हैं।]

सत्य०—मात्रा पूर्ण हो गई ! अब तो प्रलय होनी चाहिए !

चौथा दृश्य ।

स्थान—मेवाड़की एक घाटीमें महाबतखाँका खेमा ।

समय—सन्ध्या ।

[महाबतखाँ खेमेके बाहर खड़े हुए पहाड़ोंपर अस्त होनेवाले सूर्य्यकी किरणें पड़ती हुई देख रहे हैं ।]

महाबत०—चलो, अस्त हो गया—

[महाराज गजसिंह आते हैं ।]

गज०—खाँ साहब !

महाबत—आइए, महाराज !

गज०—आपने फतह पाई है; पर आप अपनी फौजके साथ उदयपुरमें दाखिल क्यों नहीं होते ?

महाबत०—क्या आप मुझसे इसकी कैफियत तलब करते हैं ?

गज०—नहीं, मैंने सिर्फ यों ही पूछा था। खाँ साहब, सुना है कि इस बार मेवाड़की औरतोंने भी हथियार उठाये हैं ।

महाबत०—औरतोंने हथियार उठाये हैं !—औरतोंने ?

गज०—जी हाँ औरतोंने । अब देखिए, वे किस तरहकी लड़ाई करती हैं । अबकी बार इस लडाईमें कुछ कोमल भाव तो जरूर ही आवेगा । मैं भी इस लड़ाईमें जाऊँगा ।

महाबत०—महाराज, आप राजपूत होकर भी राजपूत औरतोंके बारेमें ऐसा बाहियात मजाक करते हैं ! क्या आप सचमुच राजपूत हैं ? नहीं—

गज०—खाँ साहब !—

महाबत०—जाइए, जाइए, अपनी यह बहादुरी अपने मुल्कके लिए रख छोड़िए । कभी काम आयगी ।

[गजसिंह जाते हैं ।]

महाबत०—ये ही सब हजरत हिन्दू धर्म्मका झण्डा उड़ाते हैं। हिन्दुओ ! तुम लोग अपना मुल्क तो खैर, हारे ही थे; पर साथ ही साथ तुम लोगोंने अपनी आदमीयत भी खो दी !

[एक सिपाही आता है ।]

महाबत०—क्या खबर है ?

सि०—शाहजादा साहब मय फौजके तशरीफ लाये हैं।

महाबत०—आ गये ?—अच्छा जाओ।

[सिपाही चला जाता है।]

महा०—अब और फौज लेकर आनेकी तो जरूरत नहीं थी। मेवाड़को तो मैं खतम ही कर चुका था। लेकिन हाँ, मैं मुगलोंकी फौजको लेकर उदयपुरके किलेमें नहीं जाना चाहता था, सो अब यह काम शाहजादा साहब—मुगल, खुद कर लेंगे। मेरा काम यहीं खतम हो जाता है।

[गोविन्दसिंह आते हैं।]

महा०—आप कौन हैं ?

गोविन्द—मैं मेवाड़का एक सरदार हूँ।

महा०—यहाँ क्यों आये ?

गोविन्द—बतलाता हूँ, जरा साँस ले लेने दो।

महा०—क्या आपको राणा अमरसिंहने सन्धि करनेके लिए भेजा है ?

गोविन्द—ऐसा होनेसे पहले मुझ पर बिजली टूट पड़े !

महा०—तब फिर आप क्या चाहते हैं ?

गोविन्द—मैं मरना चाहता हूँ। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ, मरना चाहता हूँ। मैं लड़कर मरना चाहता हूँ, पर किसी मामूली सिपाहीसे लड़कर नहीं मरना चाहता। मैं तुम्हारे हाथसे मरना चाहता हूँ। तुम्हारे साथ युद्ध करके मरूँगा।

महाबत०—आप पागल तो नहीं हो गये हैं ?

गोविन्द—नहीं महाबत, मैं पागल नहीं हूँ। तुम समझते होगे कि मैं द्वन्द्व युद्ध करके तुम्हें वध करनेके लिए आया हूँ।–हे ईश्वर ! यदि इस समय मुझमें इतनी शक्ति होती ! नहीं महाबतखाँ, मैं जानता हूँ कि आज द्वन्द्व युद्धमें मैं तुमसे जीत न सकूँगा; पर हाँ, मैं मर सकूँगा। मैं तुम्हारे हाथों मरना चाहता हूँ।

महा०—यह बड़ी अद्भुत इच्छा है !

गोविन्द—इसमें अद्भुतपना तो कुछ नहीं है। मैंने स्वर्गीय राणा प्रतापसिंहके पास रहकर कमसे कम पचास युद्ध किये हैं। मेरे शरीरमें घावोंके न जाने कितने चिह्न हैं। अब अन्तिम घाव तुम्हारी तलवारके आघातसे होना चाहिए।

महा०—इससे आपका लाभ क्या होगा ?

गोविन्द—लाभ तो कोई ऐसा विशेष नहीं है, पर तुम धर्म्मके मुसल्मान होने पर भी जातिके हिन्दू हो; और राणा प्रतापसिंहके भतीजे हो। इसलिए तुम्हारे हाथसे मरनेमें जरा गौरव है।

महा०—आप क्या साढ़ंबराके ठाकुर गोविन्दसिंहजी हैं ?

गोविन्द०—हः-हः-हः। पहचान लिया महाबतखाँ ? अब तो समझ गये न कि मैं क्यों तुम्हारे हाथों मरना चाहता हूँ ? महाबतखाँ, आज तुमने मेवाड़को जीता है—मेवाड़को ध्वंस किया है। पर तो भी मैं तुम्हें उदयपुरके दुर्गमें प्रवेश न करने दूँगा। मेवाड़में अब सेना नहीं है।–अब तुम्हें युद्ध नहीं करना पड़ेगा। मैं मेवाड़का अन्तिम वार हूँ। आज मैं अकेला ही मुगलोंको उदयपुरमें जानेसे रोकनेके लिए खड़ा हूँ। बिना मेरे प्राण लिये तुम उदयपुरके दुर्गमें प्रवेश न करने पाओगे। अस्त्र उठाओ !

[गोविन्दसिंह तलवार खींच लेते हैं ।]

महाबत०—लेकिन वीरवर ! मैं तो उस दुर्गमें प्रवेश ही नहीं करना चाहता ।

गोविन्द०—चाहे तुम प्रवेश करना चाहो और चाहे न चाहो, मेरे लिए दोनों बराबर हैं ।—लो, अस्त्र उठाओ ।

महाबत०—सुनिए—

गोविन्द—नहीं नहीं, मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता । मेरे अन्दर बड़ी तेज आग जल रही है । मेरा पुत्र नहीं रहा—कन्या नहीं रही, अब मैं मरना चाहता हूँ । अपने स्वाधीन मेवाड़को मुगलों द्वारा पद-दलित होता हुआ देखनेसे पहले ही मैं मरना चाहता हूँ । और मैं उसीके हाथसे मरना चाहता हूँ जो दामाद होने पर भी मेरे पुत्रकी हत्या करनेवाला है, जो हमारे देशकी सन्तान होकर भी दूसरोंका गुलाम है, जो हमारे धर्म्मका होकर भी मुसलमान है, जो हमारे राजाका भाई होकर भी उनका शत्रु है । महाबत, अस्त्र उठाओ !

महा०—(तलवार खींचकर) आप शान्त हो जायँ ! मैं आपको कभी न मारूँगा ।

गोविन्द०—मैं कुछ नहीं सुनना चाहता । अपनी रक्षा करो ।

महा०—गोविन्दसिंहजी,—

गोविन्द०—मुझे मारो—मारो—

महा०—मैं अस्त्र रख देता हूँ ।

गोविन्द०—महाबत, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा । अस्त्र लो । आज मैं मरनेके लिए आया हूँ; अवश्य मरूँगा । अस्त्र लो । मैं नहीं छोड़ूँगा ।

[गोविन्दसिंह आक्रमण करना चाहते हैं । इतनेमें पीछेसे गजसिंह आकर गोविन्दसिंह पर गोली चलाते हैं । गोविन्दसिंह गिर पड़ते हैं ।]

महा०—यह क्या ? महाराज, यह आपने क्या किया ?

गज०—इसे मार डाला।

महा०—आप जानते हैं, ये कौन हैं ?

गज०—क्यों ? कोई डाकू होगा।

गोविन्द—गजसिंह, मैं डाकू नहीं हूँ--डाकू आप हैं। दूसरोंका राज्य लूटनेके लिए मैं नहीं आया हूँ; आप आये हैं। महाबतखाँ! जाओ, अब तुम उदयपुर जाओ। अब तुम्हें कोई न रोकेगा। अपनी माताको पकड़कर मुगलोंकी दासी बनाओ। सन्तानका कर्तव्य पूरा करो। अजय!—कल्याणी!....

[गोविन्दसिंह छटापटाकर मर जाते हैं।]

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—उदयपुरके दुर्गके सामनेका एक रास्ता।

समय-रात।

[एक दुर्गरक्षक राजपूत सैनिकके साथ कई नागरिक बातें कर रहे हैं।]

पहला ना०—क्यों जी, हमारे महाराज दुर्गसे आज बाहर क्यों गये ?

सै०—क्यों गये हैं, यह तो नहीं मालूम; पर इतना सुना है कि सेनापति महाबतखाँने मेवाड़के विरुद्ध हथियार रख कर बादशाहको एक पत्र लिख भेजा था। इसी लिए अबकी शाहजादा खुर्रम लड़ने आये हैं। एक मुगलदूत शाहजादेके यहाँसे एक पत्र लेकर आया था। सुनते हैं, उसी पत्रमें उसने मेल करनेकी इच्छा प्रकट की थी। मुगल-दूतके चले जानेपर उसके दूसरे दिन—आज सबेरे राणाजी घोड़ेपर सवार होकर शाहजादेके खेमेकी ओर गये हैं।

दूसरा ना०—फिर क्या हुआ ?

सै०—इसके आगे क्या हुआ, सो मुझे नहीं मालूम।

तीसरा ना०—क्या राणाजी अभी तक लौट कर नहीं आये?

सै०—नहीं।

चौथा ना०—उनके साथ और कौन गया है?

सै०—कोई नहीं। वे अकेले गये हैं।

पहला ना०—देखो, वे कौन हैं?

दूसरा ना०—हमारे राणाजी ही तो नहीं हैं?

तीसरा ना०—लेकिन नहीं, ये राणाजी तो नहीं जान पड़ते।

चौथा ना०—कपड़े तो राजाओंकेसे ही हैं। (सिपाहीसे) क्यों जी, तुम जानते हो, वे कौन हैं?

सै०—वे जोधपुरके महाराज गजसिंह हैं।

पहला ना०—वही न जो महाबतखाँके साथ मेवाड़ पर आक्रमण करने आये हैं?

सै०—हाँ।

दूसरा ना०—ये राजपूत ही हैं न?

तीसरा ना०—राजपूत होकर भी राजपूतोंके शत्रु हैं।

[बहुतसे सैनिकोंके साथ महाराज गजसिंह आते हैं।]

गज०—(सैनिकसे) किलेका फाटक बन्द है?

सै०—हाँ महाराज!

गज०—फाटक खोलो, अब यह किला हमारा है।

सै०—महाराज! बिना अपने प्रभुकी आज्ञाके मैं यह फाटक नहीं खोल सकता।

गज०—प्रभुकी आज्ञा? तुम्हारे प्रभु अब राणा अमरसिंह नहीं है; तुम्हारे प्रभु अब हम हैं।

सै०—आप हैं! मुझे मालूम नहीं था। पर तो भी बिना राणा अमरसिंहजीकी आज्ञाके मैं किलेका फाटक नहीं खोल सकता।

गज०—(अपने सैनिकोंसे) इससे फाटककी ताली छीन लो।

सै०—प्राण रहते आप लोग ताली नहीं ले सकते। (तलवार खींच लेता है।)

गज०—अच्छा, इसे मार डालो।

पहला ना०—(दूसरे नागरिकोंसे) खड़े खड़े क्या देखते हो? मारो।

[सब लोग मिलकर गजसिंह पर आक्रमण करते हैं।]

गज०—बहादुरो,—

[गजसिंहके सिपाही नागरिकों पर आक्रमण करते हैं। इतनेमें बहुतसे मुगल-सैनिकोंके साथ राणा अमरसिंह आ पहुँचते हैं।]

राणा—सैनिको, अस्त्र रख दो।

[मुगल सिपाहियोंको देखकर राजपूत सैनिक अस्त्र रख देते हैं।]

राणा—महाराज गजसिंह! यहाँ आपका क्या काम था?

गज०—हम इस दुर्गमें प्रवेश करना चाहते हैं।

राणा—राज-अतिथि! राणा अमरसिंह तुम्हारा यथोचित आदर सत्कार करेंगे। मुगलोंके कुत्ते! ले यह तेरे योग्य अतिथि-सत्कार है! (लात मार कर गजसिंहको जमीन पर गिरा देते हैं।)

राणा—साहसी सैनिक! दुर्गका द्वार खोल दो। (द्वार खुल जाने पर मुगल सैनिकोंसे) अब तुम लोग वापस जा सकते हो।

[राणा दुर्गमें प्रवेश करतें हैं, दुर्गका दार बन्द हो जाता है।]

छट्ठा दृश्य ।

स्थान—मेवाड़का पहाड़ी रास्ता । **समय**—सन्ध्या ।

[सत्यवती, अरुणसिंह और कई चारणियाँ ।]

चारणियाँ गाती हैं ।

(१)

टूटा है सुखस्वप्न हमारा, तार बीनके टूटे हैं ।
गावें क्या मेवाड़देशके भाग, देख लो फूटे हैं ॥
इस मेवाड़ शैलकी शोभा सत्यानाश हुई सारी ।
आसमानसे मानों इस पर आकर वज्र गिरा भारी ॥
अब मेवाड़ शिखर पर झंडा लाल नहीं फहराता है ।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ॥

(२)

पक्षीगण इसकी कुंजोंमें गीत नहीं अब गाते हैं ।
फूलोंका रस पीनेको अब नहीं भ्रमरगण आते हैं ॥
शशि भी शोभाहीन हुआ है मलय वायु नहिं बहती है ।
छाई दोनों तीर उदासी नदी शुष्क हो रहती है ॥
अब मेवाड़ शिखर पर झंडा लाल नहीं फहराता है ।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ।

(३)

जंगलमें मंगल नहिं होता, चहल पहल नहिं गाँवोंमें ।
नरनारी गण फिरें बिलखते फँसे हुए विपदाओंमें ॥
राजपूत वीरोंकी अब है नहीं चमकती तलवारें ।
सुन्दरियाँ भी डरके मारे नहीं वसन भूषण धारें ॥
अब मेवाड़ शिखरपर झंडा लाल नहीं फहराता है ।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ॥

(४)

तिमिरावृत मेवाड़ हुआ है सुख सर्वस्व गँवाया है ।
चारण-गणने यश गाकर बस धीरज उसे धराया है ॥

चला जाय सुख उसका सारा किन्तु कहानी रह जावे।
गूँज उठे मेवाड़ शून्य यह जब चारण इसको गावें ॥
अब मेवाड़ शिखर पर झंडा लाल नहीं फहराता है ।
दशा देख आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है ॥

[तीन सैनिकोंके साथ हिदायतअलीका प्रवेश ।]

हिदायत०—तुम कौन हो ?

सत्य०—मैं चारणी हूँ ।

हिदा०—तुम गलियों और रास्तोंमें यही गाना गाती फिरती हो ?

सत्य०—हाँ, हम लोगोंका यही काम है ।

हिदा०—अब तुम यह गीत न गा सकोगी ।

सत्य०—क्यों ?

हिदा०—अब यह मुल्क तुम्हारा नहीं है; मुगलोंके हाथ आ गया है ।

सत्य०—मुगलोंकी जय हो ! जितने दिनों तक मेवाड़ स्वाधीन था, उतने दिनों तक हम लोगोंने युद्ध किया । पर जब मेवाड़ने सिर झुका कर मुगलोंका अधिकार मान लिया, तब मुगलोंके साथ हम लोगोंका कोई झगड़ा नहीं है । लेकिन क्या इसी लिए हम लोग रो भी न सकेंगे ? सिपाही साहब ! दुनियामें सभी लोग अपनी माँको चाहते हैं, तब अभागे मेवाड़वासी ही उस पर प्रेम करना क्यों छोड़ दें ?

हिदा०—नहीं, तुम यह गीत न गा सकोगी ।

अरुण०—हम लोग गावेंगे, देखें कौन रोकता है; गाओ माँ ।

हिदा०—अगर तुम लोग यह गाना गाओगे, तो कैद कर लिये जाओगे ।

सत्य०—अच्छी बात है, आप हम लोगोंको कैद कर लीजिए । हम लोग आपके अँधेरे कैदखानेमें ही बैठे बैठे अपने दुःखका यह गीत गावेंगे । गाओ बेटा ।

हिदा०—अच्छी बात है ! अब तुम लोग कैद हो गये । (आगे बढ़ता है ।)

अरुण०—(तलवार खींचकर) अगर जान प्यारी हो तो खबरदार! माँको हाथ न लगाना ।

हिदा०—अरे उद्धत छोकरे ! तलवार रख दे ।

अरुण—(कडककर कर) रखा लो !

हिदा०—सिपाहियो ! इसे मारो।

[सिपाही आगे बढ़कर अरुण पर वार करना चाहते हैं, अरुण उनसे लडता है ।]

सत्य०—शाबाश बेटा ! अपनी माताकी रक्षा करो ।

[एक मुगल सिपाही घायल होकर गिर पडता है ।]

सत्य०—शाबाश बेटा ! प्राण रहते अस्त्र न छोड़ना । ऐसा ही चाहिए ! वाह ! कैसा आनन्द है !

(हिदायतअली अरुण पर स्वयं आक्रमण करता है । अरुणसिंहको दोनों सिपाही और हिदायतअली घेर लेते हैं । अपने पुत्रकी मृत्यु निकट समझकर सत्यवती थोडी देरके लिए आँखें बन्द कर लेती है । इतनेमें महाबतखाँ कई सिपाहियोंके साथ वहाँ आ पहुँचते हैं ।)

महाबत०—हिदायत अली ! ठहर जाओ ।

[सब लोग लड़ना छोड़ देते हैं ।]

महाबत०—हिदायतअली, तुम्हें शर्म नहीं आती ! एक लड़के पर दो दो जवान मिल कर वार कर रहे हैं, और ऊपरसे तुम भी उनकी मदद करते हो ! छिः ! (अरुणसे)—बेटा ! तुम अपनी जानकी परवा न करके अपनी माँको बचा रहे थे ! तुम धन्य हो ! प्राणोंके उत्सर्ग करनेका मार्ग यही तो है ! जीते रहो !

[सत्यवती इतनी देर तक चुपचाप बड़े गौरव और आनन्दसे अपने पुत्र अरुणकी ओर देख रही थी । अब वह महाबतखाँकी ओर दो कदम आगे

बढ़ती है और फिर पीछे हट कर सिर झुका लेती है । महाबतखाँ सत्यवतीकी ओर देखने लगते हैं ।]

महा०—बहन ! मैं तुमसे क्या कहूँ ! अब तुम्हें 'बहन' कहकर पुकारनेका अधिकार भी मुझे नहीं रह गया।—तब मैं क्या कहूँ ! मुझे क्षमा करो—बहन !

सत्य०—हे ईश्वर !—यह तुमने क्या किया ! मेरा छोटा भाई मुझे बहन कहकर पुकार रहा है, तो भी मैं उसे खींच कर हृदयसे नहीं लगा सकती हूँ !—

अरुण०—माँ, ये कौन हैं ?

सत्य०—ये मुगल-सेनापति महाबतखाँ हैं ।

महा०—बेटा, मैं तुम्हारा मामा हूँ ।

सत्य०—चलो बेटा, हम लोग चलें ।

महा०—कहाँ जाओगी ? मुझे क्षमा करती जाओ ।

सत्य०—महाबतखाँ, तुम जानते हो कि तुमने कौन सा पाप किया है ?

महा०—हाँ, मैं जानता हूँ । मैंने अपने हाथसे अपने घरमें आग लगाई है और उसमेंसे उठते हुए धूमको पैशाचिक आनन्दसे देखा है।

सत्य०—केवल इतना ही ?

महा०—और क्या ! मैं मुसलमान हो गया हूँ, पर इसके लिए मैं यह स्वीकार नहीं करता कि मैंने कोई पाप किया है—जिसका जैसा विश्वास हो वैसा माननेके लिए वह स्वतंत्र है । तो भी—

सत्य०—बहुत ठीक ! (अरुणसे) आओ बेटा, चलें ।

महा०—यदि मुसलमान होनेको भी पाप मान लिया जाय, तो भी वह पाप क्या इतना भयानक है कि मनुष्यके हृदयकी सारी कोमल

प्रवृत्तियोंको नष्ट कर दे!--बहन, मैं जानता हूँ कि स्त्रियोंका हृदय पवित्रताका तपोवन, आत्मोत्सर्गका लीलास्थल और प्रीतिका नन्दन कानन है। पर क्या आचारके नियम इतने कठोर हैं कि वे स्त्रीके ऐसे हृदयको भी पत्थर बना दें! एक बार थोड़ी देरके लिए तुम यह भूल जाओ कि तुम हिन्दू हो और मैं मुसलमान--तुम पीड़ित हो और मैं अत्याचारी। केवल इतना ही समझो कि तुम भी मनुष्य हो और मैं भी मनुष्य हूँ--तुम बहन हो और मैं भाई हूँ। उस बाल्यावस्थाका ध्यान करो जब तुम मुझे गोदमें लेकर घूमती थीं, मेरे गालोंको चूमा ले-लेकर भर देती थीं और मुझे छातीसे लगाकर सोती थीं! बहन, स्मरण करो--हम तुम वही मातृहीन भाई--बहन हैं।

सत्य०---हे भगवान्---

महा०---बहन---

सत्य०---अब नहीं सहा जाता! जो होना था सो हो चुका।--छोटे भइया मेरे! जाओ, मैंने तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर दिये। भगवानसे प्रार्थना है कि वे भी तुम्हें क्षमा कर दें। जाओ भइया, मैं अब तुम्हें मुगलसेनापति महाबतखाँ नहीं समझती। मेरे लिए अब भी तुम मेरे वही छोटे भाई महीपति हो।--भइया, जाओ।

महा०---अच्छा बहन, अब मैं जाता हूँ। (सत्यवतीको प्रणाम करते हैं।)

सत्य०---आयुष्मान् होओ भइया! (अरुणसे)--चलो बेटा, चलें।

हिदा०---तुम लोग कहाँ जाओगे? मैं तुम्हें कैद करूँगा।

महा०---किसीकी मजाल नहीं जो मेरे सामने मेरी बहनका बाल भी बाँका कर सके। जाओ बहन!

हिदा०—खाँसाहब ! अब आप सिपहसालार नहीं हैं, इस लिए मैं आपकी बात नहीं मान सकता । इस वक्त सिपहसालार हैं शाहजादा खुर्रम ।

[शाहजादाका प्रवेश ।]

शाह०—अच्छी बात है ! खैर, मैं खुद हुक्म देता हूँ ! (सत्यवतीसे) जाओ, तुम लोग अपने घर जाओ ।

हिदा०—लेकिन शाहजादा साहब ! यह औरत यों ही गागाकर बगावत फैलाती फिरती है !

शाह०—मैं दूरसे उसका गाना सुन रहा था । वह गाना मायूसी और गमसे भरा हुआ है ।

हिदा०—शाहजादा साहब, इस तरहके गानोंसे सल्तनतके अमन-अमानमें खलल पड़ेगा ।

शाह०—नहीं, सल्तनतके अमन-अमानकी हिफाजत कर ली जायगी । मुगलबादशाह उसकी हिफाजत करना जानते हैं । हिदायत अली, अगर वतनकी मुहब्बतके इस तरहके गानोंसे सिर्फ मेवाड़से ही नहीं बल्कि सारे हिन्दोस्तानसे मुगलोंकी हुकूमत, जाड़ेके मौसमके एक बादलके टुकड़ेकी तरह जाती रहे, तो उसे उठ जाने दो। मुगलोंकी सल्तनत इतनी कच्ची और बालू पर बनी हुई नहीं है । उसका पाया हिन्दोस्तानियोंकी गहरी और मजबूत मुहब्बत पर है। अगर कोई शख्स मुनासिब तरीकेपर अपने वतनके साथ मुहब्बत करे, अपने मुल्ककी परस्तिश करे तो उसमें कभी दखल न देना चाहिए । अगर सिर्फ इसी लिए सारी सल्तनत चली जाय तो कोई परवा नहीं । हिदायत अली, समझ गये !

हिदा०—जी हाँ, शाहजादा साहब ।

शाह०—(सत्यवतीसे) गाओ बहन, तुम वही गाना गाओ। इस बातका अफसोस नहीं है कि तुम लोग यह गाना गाती फिरती हो, बल्कि अफसोस इस बातका है कि आज मेवाड़में यह गाना सुननेवाले लोग नहीं हैं। गाओ बहन, कोई डर नहीं है। मैं सुनूँगा। मैं तुम्हारे मुल्ककी पुरानी अजमत सुनकर आँसू बहाना जानता हूँ। गाओ, गाओ, तुम सब लोग गाओ। मैं भी तुम लोगोंका साथ दूँगा। हिदायतअली, तुम भी गाओ। सिपाहियो, तुम लोग भी गाओ।

(सब लोग वहाँसे गाते हुए जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान--उदयसागरका किनारा। **समय**—सन्ध्या।

(मानसी अकेली खड़ी है।)

मानसी—मेरे ऊपरसे होकर एक आँधी निकल गई है। अब फिर मुझे समुद्रका वही मृदु, गम्भीर और अनादि संगीत सुनाई पड़ता है। अब तो वह पहलेसे भी सौगुना मधुर जान पड़ता है! मेघ हट गये। अब फिर आकाशमें वही नक्षत्रोज्वल नीलिमा दिखाई पड़ती है,--पर अब वह पहलेसे सौगुनी निर्मल है! मैं देखती हूँ कि आज मेरा कर्त्तव्यपथ जीवनके छोटे मोटे सुखों और दुःखोंकी सीमा छोड़कर बहुत दूर तक फैल गया है।

[कल्याणी आती है।]

मान०—कौन? कल्याणी?

कल्या०—हाँ राजकुमारी!

मान०—फिर वही 'राजकुमारी'! अब तो हमारा तुम्हारा नया सम्बन्ध हो गया है! बहन कल्याणी! तुम तो फिर रोने लग गईं! छिः!

कल्याणी—नहीं बहन, अब मैं नहीं रोऊँगी । क्या करूँ, रहा नहीं जाता। इसी लिए मैं दौड़ी हुई तुम्हारे पास चली आई। मुझे धीरज बँधाओ ।

मान०—कल्याणी, तुम अपना सारा दुःख मुझे दे दो और मेरा सुख तुम ले लो ।

कल्या०—तुम्हारा सुख !

मान०—हाँ, मेरा सुख । दुःख मुझे अच्छी तरह पीस डालनेके लिए आया था; पर वह मुझे पीस न सका और न आगे ही पीस सकेगा। मैं दुःखको हिंसक जन्तुकी तरह बाँधकर वशमें करूँगी और उससे काम लूँगी । कल्याणी, दुःखने मेरा बहुत उपकार किया है । इतने दिनों तक मैं सुखके राज्यमें रहती थी, दुःखका राज्य मुझे दूरसे आँधी या कुहासेकी तरह दिखाई पड़ता था। अब मैं उसी दुःखके राज्यमें वास करने लगी हूँ । मैंने शत्रुको जान पहचान लिया है । अब वह मुझे कभी असावधान न पावेगा । इतने दिनों तक जीवन अपूर्ण था, अब वह पूर्ण हो गया।

कल्या०—बहन, तुम धन्य हो !

मान०—बहन, तुम भी धन्य होओगी !

कल्या०—किस तरह बहन ?

मान०—तुम इस काममें मुझे सहायता दो । आओ, हम दोनों मिलकर मनुष्य जातिके कल्याणके लिए अपना अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। तुम्हारा 'कल्याणी' नाम सार्थक हो !—मुझे सहायता दोगी ?

कल्या०—हाँ बहन, दूँगी ।

मान०—अच्छा । तब देखो कि तुम्हें धैर्य्य होता है या नहीं। जिसका यह व्रत हो फिर उसे काहेका दुःख ?

कल्या०—अच्छी बात है ! मेरा व्यर्थ प्रेम तुम्हारे ही काममें सार्थक हो ।

मान०—क्या तुम अब भी महाबतखाँके प्रति घृणा करती हो ?

कल्या०—बहन, उस दिन मैं अभिमान करके उन्हें कड़ी कड़ी बातें सुनाकर चली आई थी और यही कह आई थी कि मैं तुमसे घृणा करती हूँ; लेकिन अब मुझे मालूम हुआ कि मुझमें उनके प्रति घृणा करनेकी शक्ति नहीं है । बाल्यावस्थासे ही जिसका ध्यान करके मैं इतनी बड़ी हुई हूँ, यौवन-कालमें जिसे मैंने अपने जीवनका ध्रुव तारा माना है, इस हताशाके अन्धकारमें भी जिसकी चिन्ता मेरे भीतर रावणकी चिताकी तरह बराबर जल रही है, उसके प्रति मैं घृणा नहीं कर सकती । वह केवल बात ही बात है ।

मान०—कल्याणी, उसकी आवश्यकता भी नहीं है । तुम अपने प्रेमको मनुष्यत्वमें—सारे मनुष्यसमाजमें व्याप्त कर दो । तुम्हें शान्ति मिलेगी । विश्वप्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। वह योग्य और अयोग्यका भी विचार नहीं करता। वह सेवा करके ही सुखी होता है ।

[सत्यवती आती है ।]

सत्य०—मानसी, तुम्हें तुम्हारे पिताजी बुला रहे हैं ।

मान०—वे लौट आये ?

सत्य०—हाँ ।

मान०—मुगलोंके साथ सन्धि हो गई ?

सत्य०—नहीं । महाराजने देखा कि शाहजादा खुर्रमने मेलके लिए उनके पास जो पत्र भेजा था, उसमेंकी सब बातें खाली जबानी जमाखर्च ही थीं। वे केवल आकाश-कुसुम थीं, केवल मृगतृष्णा थीं ।

मान०—क्यों ?

सत्य०—(थोड़ी देर तक चुप रहकर) मानसी ! मेल होता है बराबरवालोंमें । हाथका मेल हाथके साथ होता है । पैरके आघातके साथ पीठका मेल नहीं होता; जयध्वनिके साथ रोने पीटनेका मेल नहीं होता । शाहजादा चाहते हैं कि राणाजी दुर्गसे बाहर निकलकर शाही फरमान लें । मानसी ! राणा प्रतापसिंहके पुत्रके लिए इस अपमानकी अपेक्षा तो मृत्यु ही अच्छी है ।

मान०—अब पिताजी क्या करेंगे ?

सत्य०—आज उन्होंने सब सामन्तोंको बुलाकर अपने पुत्रको सिंहासन पर बैठा दिया है और राज्यका भार त्याग दिया है । वे रानीको साथ लेकर राज्यसे निकल जायँगे और जंगलमें जा रहेंगे । मानसी ! आज मेवाड़का पतन होगया ।

मान०—मेवाड़का पतन क्या आज आरम्भ हुआ है ? नहीं, उसका पतन तो बहुत दिन पहले ही आरम्भ हो चुका है । यह पतन उस परम्पराकी एक गाँठ मात्र है ।

सत्य०—तब वह पतन आरम्भ कब हुआ था ?

मान०—जिस दिनसे मेवाड़ अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध आचारका हाथ पकड़कर केवल उसीके सहारे चलने लगा और जिस दिनसे वह सोचना-समझना भूल गया। जबतक स्रोत बहता रहता है, तबतक जल शुद्ध रहता है, पर जब स्रोतका बहना बन्द हो जाता है तब उसमें कीड़े पैदा होने लगते हैं। इसीसे आज इस जातिमें नीच स्वार्थ, क्षुद्रता, भ्रातृ-द्रोह और विजाति-द्वेष आदि दोषोंका जन्म हुआ है । पूर्वकालका उदार–अति उदार हिन्दूधर्म–आज प्राणहीन होगया है,

आचारकी ठठरी भर रह गई है। जिसका धर्म्म चला गया, क्या उसका पतन न होगा? अब यह देखना चाहिए कि जातिमें कितना पाप फैल गया है। मेवाड़के पतनके लिए व्यर्थ रोनेसे क्या होगा?

सत्य०—तब क्या इस दुःखमें यही सान्त्वना है?

मान०—नहीं, इससे भी बढ़कर सान्त्वना है। वह सान्त्वना यह है कि मेवाड़ चला गया है तो उसे जाने दो, हमें उससे भी बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हो। हम चाहती हैं कि हमारे भाई नैतिक बलसे—चरित्रबलसे शक्तिमान हों कि जिससे वे दुःखमें, निराशामें और आँधीके अन्धकारमें धर्म्मको अपने जीवनका ध्रुव तारा बनावें। और यदि वे ऐसा न करें तो नष्ट हो जायँ; हमें उसके लिए दुःख न होगा।

सत्य०—हमारे भाई नष्ट हो जायँ और हम उन्हें नष्ट होते हुए चुपचाप देखा करें?

मान०—नहीं, हम उन्हें प्राण-पणसे बचानेकी चेष्टा करें। पर तो भी यदि हम अपने प्रयत्नमें कृतकार्य्य न हो सकें तो कोई वश नहीं—ईश्वरका मंगल नियम पूरा हो। जिस प्रकार स्वार्थकी अपेक्षा जातीयता बड़ी है, उसी प्रकार जातीयताकी अपेक्षा मनुष्यत्व बड़ा है। जातीयता यदि मनुष्यत्वकी विरोधिनी हो, तो ऐसी जातीयताका मनुष्यत्वके महासमुद्रमें विलीन हो जाना अच्छा है। अच्छा हो यदि ऐसे मनुष्यत्वविहीन देशकी स्वाधीनता डूब जाय; और वह जाति फिर मनुष्य बन जाय।

सत्य०—क्या कभी ऐसा होगा?

मान०—क्यों नहीं होगा! हमें चाहिए कि हम सब उसीकी साधना करें। उच्च साधना कभी निष्फल नहीं होती। इस जातिके लोग फिर मनुष्य बनेगें।

सत्य०—कब ?

मान०—जिस दिन लोग इन सीमासे बाहर पहुँचे हुए आचारोंके क्रीतदास न रह कर स्वयं सोचना-विचारना सीखेंगे; जिस दिन उनके भीतर भावोंका स्रोत फिरसे बहेगा; जिस दिन लोग जिसे उचित और कर्त्तव्य समझेंगे उसे निर्भय होकर करते जायँगे–इसमें किसीकी प्रशँसाकी या किसीके बिगड़ने या नाराज होनेकी अपेक्षा न रक्खेंगे;–किसीकी टेढ़ी की हुई भोंहोंकी जरा भी परवा न करेंगे और जिस दिन लोग युगोंकी पुरानी पोथियाँ फेंक कर नया धर्म्म ग्रहण करेंगे।

सत्य०—वह नया धर्म्म कौनसा ?

मान०—उस धर्मका नाम है प्रेम। जो कोई इस धर्म्मका उपासक बनता है, उसे अपने आपको छोड़ कर क्रमशः भाईके साथ, जातिके साथ, मनुष्यके साथ, और उसके बाद मनुष्यताके साथ प्रेम करना सीखना पड़ता है। इसके बाद उसे स्वयं और कुछ नहीं करना पड़ता। ईश्वरका कोई अज्ञेय नियम उसके भविष्यको स्वयं ही सुधार देता है। बहिन, जातीय उन्नतिका मार्ग लहूकी नदियोंके बीचसे होकर नहीं है; बल्कि प्रेम-पूर्वक परस्पर आलिंगनके मध्यसे होकर है। जो पथ चैतन्य देव दिखला गये हैं, उसी पथ पर चलो। यदि हम स्वयं ही नीच, कुटिल और स्वार्थी बने रहे तो राणा प्रतापसिंहकी स्मृति मस्तक पर रखकर और गत गौरवका निर्वाण-प्रदीप गोदमें रख कर जन्मभर रोते रहनेसे भी हमारे किये कुछ न होगा।

[सब जाती हैं।]

आठवाँ दृश्य ।

स्थान—उदयसागरका किनारा ।

समय—सन्ध्या ।

(बादल घिरे हुए हैं । राणा अमरसिंह अकेले खड़े हैं ।)

राणा—मेवाड़का आकाश क्रोधसे गरज रहा है । मेवाड़के पहाड़ लज्जासे मुँह ढँके हुए हैं । मेवाड़का सरोवर क्षोभके मारे किनारोंसे टकरा रहा है । मेवाड़के कुल-देवताओंने रोषसे मुँह फेर लिया है । आज हमारे हाथों हमारे मेवाड़का—राणा प्रतापके मेवाड़का—पतन हो गया । हाय ! (इधर उधर टहलने लगते हैं ।)

[महाबतखाँ आते हैं ।]

राणा—बन्दगी जनाब !

महा०—मेवाड़के राणाकी जय हो !

राणा—जनाब सिपहसालार साहब ! आप खाली लहूकी नदियँ बहाना ही नहीं जानते, बल्कि व्यंग करना भी खूब जानते हैं । अच्छी बात है, मेवाड़के राणाकी जय हो !

महा०—नहीं महाराज ! मैं व्यंग नहीं करता ।

राणा—तुम्हारे व्यंग करने या न करनेसे कुछ होता जाता नहीं। महाबतखाँ, हम तुमसे एक बार मिलना चाहते थे ।

महा०—कहिए, क्या आज्ञा है ।

राणा—तुममें विनय तो ब है ! अच्छा सुनो । हमने तुम्हें एक ऐसे कामके लिए बुलाया है जो तुम्हारे सिवा और किसीसे नहीं हो सकता ।

महा०—आज्ञा कीजिए, महाराज !

राणा—महाबतखाँ, जरा एक बार हमारी ओर देखकर बतलाओ तो सही कि तुम हमारे कौन हो ?

महा०—महाराज, मैं आपका भाई हूँ ।

राणा—बहुत ठीक; और तुमने काम भी भाईके योग्य ही किया है। तुमने अपने पितामह और प्रपितामहकी भूमि मेवाड़को मुगलों द्वारा पद-दलित कराया है! तुम्हारे दोनों हाथ उसके लहूसे रँगे हुए हैं!

महा०—महाराज, मैंने बादशाहका नमक खाया है।

राणा—सो कबसे? महाबतखाँ, जाने दो, तुमने तुम्हारा जो काम था उसे किया। उसके लिए तुमसे वादविवाद करना व्यर्थ है। जो विधर्मी हो, मुगलोंकी जूठन खानेवाला हो, उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। जो एक अनियम और उद्दाम स्वेच्छाचारका उद्गमन हो उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। तुमने मेवाड़का ध्वंस किया है, पर वह काम अभी तक पूरा नहीं हुआ। तुम्हें उचित है कि तुम उसके साथ मेवाड़के राणाका भी अन्त कर दो। यह लो, तलवार। (तलवार आगे बढ़ाते हैं।)

महा०—राणा—

राणा—जो हम कहते हैं उसके विरुद्ध कुछ भी मत कहो। सुनो, तुम हमें मारो। इससे तुम्हारा कलंक कुछ अधिक न बढ़ जायगा। और हम तुम्हें कोई ऐसा काम भी नहीं बतला रहे हैं जो तुम्हें अप्रिय हो। हम जानते हैं कि तुम हमारा रक्त पीनेके लिए छटपटा रहे हो। तुम्हारा दाहिना हाथ हमारे प्राण लेनेके लिए आग्रहसे काँप रहा है। तुम हमारा वध कर डालो।

महा०—महाराज, महाबतखाँ इतना हीन नहीं है। मैंने तलवार चलाकर और आग लगाकर मेवाड़-भूमिको श्मशान अवश्य बना दिया है, पर तो भी मैंने अन्याय्य युद्ध नहीं किया है, न्याय्य युद्ध किया है।

राणा—न्याय्य युद्ध! महाबत, तुम इसे न्याय्य युद्ध कहते हो? एक छोटेसे राज्यके मुट्ठीभर सैनिकों पर इतने बड़े साम्राज्यकी विपुल सेना-की चढ़ाई! एक चिनगारीको बुझानेके लिए समुद्रका प्रवाह! एक बालककी आत्मा पर नरकका दुःस्वप्न! और फिर भी उसे न्याय्य युद्ध बतलाते हो? जाने दो, तुम जीत तो गये ही हो; अब उसमें जो कसर है उसे भी पूरी कर डालो। यह तलवार राणा प्रतापसिंहजी मरते समय दे गये थे और कह गये थे–' देखो, इसका अपमान न होने पावे।' पर हमने इसका अपमान किया है। अतः वह अपमान हमारे रक्तसे धुल कर साफ हो जायगा।

महा०—महाराज, महाबतखाँ योद्धा है, जल्लाद नहीं।

राणा—अच्छी बात है। तो फिर युद्ध कर लो। लो, हाथमें तलवार। (तलवार सँभालते हैं।)

महा०—महाराज, मैंने मेवाड़के विरुद्ध अस्त्र उठाना छोड़ दिया है।

राणा—वह कबसे? तलवार लो–तलवार लो। आज मेवाड़के श्मशान पर, मृत माताका शव कन्धे पर रख कर हम तुम्हें द्वंद्वयुद्धके लिए आह्वान करते हैं।

महा०—महाराज, सुनिए—

राणा—नहीं, हम कुछ भी न सुनेंगे। भीरु म्लेच्छ! कुलांगार! युद्ध कर। देखें, तेरी किस वीरता–किस बहादुरीके कारण सारा भारत काँपता है। मैं छोड़ूँगा नहीं। अधम! नरकके कीड़े! शैतान!

महा०—अच्छी बात है महाराज, तब लड़ ही लीजिए। (तलवार निकाल कर) सावधान! भारतमें यदि महाबतखाँका कोई प्रतिद्वंद्वी है तो एक राणा ही है, तो भी सावधान!

[दोनों तलवारोंको सँभालते हैं।]

राणा—आज भाई भाईमें युद्ध होता है; ऐसा युद्ध संसारमें किसीने न देखा होगा। बस अब पृथ्वी पर प्रलय हो जाय!

[इतनेमें मानसी दोनोंके बीचमें आ खड़ी होती है। उसके बाल बिखरे हुए हैं।]

मानसी—यह क्या पिताजी! यह क्या—(महाबतखाँसे) शान्त होओ!

राणा—हट जाओ बेटी, तुम इसमें बाधा मत डालो।

मानसी—पिताजी! शान्त होओ। जो कुछ सर्वनाश होना था सो हो चुका। अब उस सर्वनाशको अपने भाईके रक्तसे रंजित मत करो। इस शोकको सान्त्वना हत्या नहीं है। इसकी सान्त्वना है–फिरसे मनुष्य होना।

राणा—मनुष्य होना?–सो कैसे मानसी।

मानसी—शत्रु-मित्रका ज्ञान भूल कर, विद्वेष त्याग कर, अपनी कालिमा और देशकी कालिमाको विश्व-प्रेमके जलसे धोकर!—गाओ चारणियो, वही गीत गाओ जो मैंने तुम लोगोंको सिखलाया है।

[गेरुए वस्त्र पहने हुए बहुतसी चारणियाँ वहाँ गाती हुई आ जाती हैं। मानसी भी उनके साथ गाने लगती है।]

सोहनी—गजलकी धुन।

तुम सोक काहेको करौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ।
जो देस छूट्यो दुख न तौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ॥
है कोप औरन पै वृथा, जो आप अपने शत्रु हौ,
है दोष अपनो, मन धरौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ॥
'वर्त्तमान' आशा-रहित, जो चाहौ मिटि जाय।
तौ भाई भाई मिलौ, करौ सप्रेम सहाय॥

'यह आपनो,' 'यह गैर,' तजि यह, गैरको अपनो करौ।
यह जग भवन अपनो गनौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ ॥
होय शत्रु उन्नत-हृदय, जो उदार तौ ताहि।
प्रेमसहित दीजै हृदय, सबसों सदा सराहि ॥
अरु मित्र जो है धूर्त कपटी, शत्रु वह सबसे बड़ौ।
तुम दूरही वासों रहौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ ॥
जगमहँ द्वै सेना खड़ी, करिबेको नित जंग।
पाप-सैन्य तजि पुण्यके, दलको कीजै संग ॥
जगदीसको नितही नवौ, डूबै स्वदेस समाज हू।
है धर्म जित तितही रहौ, फिरसे मनुष्य सबै बनौ ॥*

राणा—महावत !

महा०—महाराज !

राणा—तुम्हारा कोई दोष नहीं है। हमारा ही दोष है। भाई क्षमा करो।

महा०—भइया, आप मुझे क्षमा करें।

[दोनों गले मिलते हैं।]

जवनिका पतन।

* यह गीत श्रीयुक्त पण्डित रूपनारायणजी पाण्डेयका बनाया हुआ है।

परिशिष्ट।

काफी—दीपचन्दी ठेका।

हाय यह कैसी विपति भई।
सुखको सपनो मिट्यो अचानक, सुखकी नींद गई॥ हाय०॥
टूटि गये हैं तार हृदयकी बीनाके सबई॥
या मसान महँ भग्न हृदयसों गावैं कहा दई!॥ हाय०॥

या मेवार-पहार-सिखरसों गरिमा मनौं गिरी।
वज्र-गर्भ दुख-घटा सघन है घर घर घोर घिरी॥ हाय०॥
उन्नत गढ़ मेवार सिखरपै उड़ै न लाल धुजा।
बाँके बीरनकी रनके हित फरकैं नाहिं भुजा॥ हाय०॥

हीन साज यह घोर लाज यह, नीकी लगत नहीं।
अन्धकार गंभीर! छिपा ले, देखै जगत नहीं॥ हाय०॥

बोलत नाहिं कुंजमहँ कोकिल अब उत्साह-भरे।
खिलैं न फूल, मधुप मधुहित नहिं आवत चाह-भरे॥ हाय०॥

चलै न मन्द मलय-मारुत, ससि हँसै अकास नहीं।
सरिताके दोउ तट चुप, चिन्तित, मालिन; विलास नहीं॥ हाय०

वन विषादमहँ मगन; गाँव, पुर सूने; अँधियारे।
प्रजा मालिनमुख, नीरव; घर घर सबही दुखियारे॥ हाय०॥

नहिं मेवार-वीर खुलि खेलत, कर खर खरग लिये।
मलिनमुखी सुमुखी न हँसैं कहुँ, है भयभीत हिये॥ हाय०॥

अन्धकार छायो; न देसको बाकी कछू रह्यो।
सरबस, सुख, स्वतन्त्रता, सबही समय-प्रवाह बह्यो॥ हाय०॥

चारन कवि बरनी स्वदेसकी पिछली कीर्त्ति-कथा।
तिहि बिनको धीरज दे हरि है हमरी हृदय-व्यथा?॥ हाय०॥

सुखी प्रजाको कलरव कितहू यद्यपि सुनि न परै, ।
तऊ गये गौरवकी गाथा, हियको शोक हरै ॥ हाय०॥

चारनकवि बरनी गत-गाथा, आशामय सुखदा,
सूने यहि मेवार देसमहँ गूँजत रहै सदा ॥ हाय०॥

[पाँचवें अंकके छट्ठे दृश्यके स्थानमें यह गीत भी गाया जा सकता है इसके रचयिता श्रीयुत पं० रूपनारायणजी पाण्डेय हैं ।]